ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-हिन्दी-ग्रन्थाङ्क ४६

क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

[वैयक्तिक शैलीके शृङ्खलाबद्ध लेखोंकी एक माला

श्री रावी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय,
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५६
मूल्य ढाई रुपया

मुद्रक
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०,
डी० १५।२४, मानमन्दिर,
बनारस

भूमिका

वैयक्तिक निबन्ध (Personal Essays) की शैलीके इन शृङ्खलाबद्ध लेखोंका मेरे व्यक्तिगत जीवन और चिन्तनसे निकटका सम्बन्ध है। मानवीय सह-अनुभूतिके व्यापक नियम के अनुसार इनका दूसरोंके लिए भी रोचक और उपयोगी होना स्वाभाविक है—इसीमें इस लेखमालाके प्रकाशनकी सार्थकता है। 'मुझे आपसे कुछ कहना है' के पश्चात् ऐसी निबन्धमाला की यह मेरी दूसरी पुस्तक है।

कैलास,
सिकन्दरा-आगरा
मई १९५६

—राघी.

अनुक्रम

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

[प्रथम खण्ड]

मुझे भी कहना है

एक आदमीने एक रात एक सपना देखा।

उसने देखा कि वह नगरकी चौड़ी सड़क पर अकेला चला जा रहा है। सड़क सुनसान पड़ी है—कोई दूसरा उस पर चलनेवाला नहीं है। चलते-चलते अचानक पास ही, पीछेकी ओरसे एक अति कोमल, मीठे रमणी-कण्ठकी आवाज आई—"सुनिये।"

उसने गर्दन घुमाकर पीछेकी ओर देखा, पर वहाँ कोई न था। विस्मय पूर्वक चारो ओर उसने दृष्टि दौड़ाकर देखा पर कहीं कोई भी न दीख पड़ा। उस स्वरको अपने कानोंका कोई भ्रम मानकर वह आगे बढ़ चला।

कुछ दूर चलनेपर फिर पीछेकी ओरसे ही उसके कानोंमें आवाज आई—"ठहरिये।"

उसने उसी प्रकार चौंककर देखा, इस बार भी वहाँ कोई न था। आश्चर्य-चकित और कुछ भयभीत-सा वह कुछ और आगे बढ़ गया। दूसरी बारका यह स्वर विशेष गम्भीर, सुदृढ़ और स्निग्ध, किसी पुरुषका था।

तीसरी बार फिर उसके कानोंमें उसी प्रकार एक तीसरी आवाज आई। अबकी बार किसीने उसका नाम लेकर पुकारा और इसके साथ ही उसकी आँख खुल गई। उसने अनुमान किया, यह तीसरी गम्भीर और अत्यन्त कोमल आवाज भी किसी पुरुष की ही थी।

जागकर वह अपनी कल्पनाके कानोंमें इन तीनों आवाजोंको दुहराने लगा। वह अपने मस्तिष्कका पूरा बल लगाकर सोचने लगा कि आखिर वे आवाजें उससे क्या कहना चाहती थीं? इन तीनों स्वरोंमें उसके लिए सचमुच बड़ा रस और साथ ही सुखद आश्चर्यका सामान था। जिनकी ये आवाजें थीं वे उसे स्वप्नमें दीख जाते तो वह स्वप्न कितना सुन्दर हो जाता!

यही सब सोचते और पछतावा-सा करते हुए उसे फिर नींद आ गई । रात उस समय तक पूरी नहीं हुई थी ।

आँख झपते ही उसे दुबारा फिर वही स्वप्नका दृश्य दिखाई दिया—वह उसी सड़कपर चला जा रहा है । "सुनिये" ! उसने पहले वाली आवाज फिर सुनी । गर्दन घुमाकर उसने देखा, एक अत्यन्त रूपवती तरुणी, जो सम्भवत: नगरकी सबसे अधिक सुन्दर नवयुवती थी और जिसके साथ दो-एकबार उसकी सतृष्ण आँखें चार हो चुकी थीं, उसके पीछे मानो तेजीसे चलकर उसके समीप आ गई थी । उसकी आँखोंमें एक अनिवार्य आकर्षण और कोई गहरा निवेदन भी था । इस आदमीने ज्योंहीं उसकी ओर घूमकर उससे कुछ कहना या उसकी अगली बातको सुनना चाहा, वह एकदम अदृश्य हो गई । उसे फिर देख पानेके अपने प्रयत्नोंमें विफल होकर वह हताश अपनी राह पर बढ़ चला ।

"ठहरिये !" पिछले स्वप्नकी दूसरी आवाज उसके कानोंमें दुबारा आई । घूमकर उसने पहचाना, नगरका सबसे बड़ा शासन-अधिकारी, जो नगरका सबसे बड़ा धनिक भी था उसे हाथसे रुकनेका संकेत कर रहा था । उसके स्वर और दृष्टिमें प्रसन्नता और स्नेहकी भावना छलक रही थी । पीछेकी ओर पग लौटाते ही यह मूर्ति भी अदृश्य हो गई ।

वह स्वप्न-द्रष्टा खोया-हारा-सा आगे बढ़ा ।

तीसरी आवाज, अपने नामकी पुकार—इस पुकारमें पिछले स्वप्नकी वही दृढ़ता और मिठास अब भी ज्योंकी त्यों थी—उसने फिर सुनी ।

फिरकर उसने देखा, नगरका सर्वाधिक प्रिय लोकनायक—जिसकी सहृदयता और बुद्धिमत्तापर सारा नगर मुग्ध था और जिसे नगर-शासक अपना सबसे बड़ा मित्र और पथ-प्रदर्शक मानता था—अपना हाथ मानो उसका हाथ लेनेके लिए बढ़ाये हुए उसे पुकार रहा था । नगरका ही नहीं, सारे राज्यका वह सबसे अधिक सुन्दर, सौम्य और प्रभावशाली पुरुष था । लेकिन आगे कुछ कहने-सुननेसे पूर्व ही वह मूर्ति भी अदृश्य हो गई और स्वप्न देखनेवाला व्यक्ति दुबारा जाग उठा ।

इस स्वप्नका अर्थ क्या था ? स्वप्नोंका क्या कुछ अर्थ भी हुआ करता है ?

स्वप्नोंका कुछ अर्थ होता हो या न होता हो, इतना अवश्य है कि कुछ स्वप्न सुन्दर होते हैं—उन स्वप्नोंको देखते समय सुख मिलता है और उनकी यादकी मिठास भी कुछ समय तक बनी रहती है। कुछ स्वप्नोंसे देखनेवालेको कभी-कभी सोचनेके लिए कुछ कामका मसाला भी मिल जाता है।

जिन तीन व्यक्तियोंको इस आदमीने दूसरे स्वप्नमें देखा उन्हें वह पहलेसे ही जानता था, उनके कृपा-पूर्ण सम्पर्कमें आनेकी कभी-कभी उसने कुछ कामना भी की थी और उनके सम्पर्कको अपना सबसे बड़ा सुख और सौभाग्य मान सकता था। इनके निकट सम्पर्कको वह अति दुर्लभ भी मानता था। उन तीनों मूर्तियोंकी याद करते-करते वह कुछ देरके लिए बिछौनेपर पड़ा हुआ एक गहरे सुखमें नहा उठा।

और तब उसे ध्यान आया कि वह केवल एक सपना ही था। वह केवल एक झूठा दृश्य ही था, इस बातकी उसके मनमें एक टीस भी कसक उठी। निस्संदेह, इससे उसके मनको एक पीड़ा भी हुई।

वह सोचने लगा—क्या यह बिलकुल असम्भव है कि वह सुन्दरी सचमुच उससे कुछ प्रेम करती हो या आगे कर सके; उस राज्याधिकारीकी कृपा-दृष्टि और उस सर्वमान्य लोकनायककी सहृदय मित्रता उसे कभी प्राप्त हो सकती हो ! सोचते-सोचते उसके हृदयमें इन तीनोंके सम्पर्ककी कामना स्पष्ट रूपसे जाग उठी।

अचानक स्वप्नकी एक नई विशेषता उसकी स्मृतिमें कौंध उठी। पहले स्वप्नमें उसने केवल आवाजें सुनी थीं और जागकर उन आवाजोंका अर्थ जानने और उनके बोलनेवालोंका रूप देखनेकी कामना भी की थी। स्वप्नकी इस विशेषताका ध्यान आते ही हर्ष और आश्चर्यकी एक भावना उसके हृदयमें उबल पड़ी। स्वप्नकी सार्थकतामें उसकी कुछ आशा-सी बँध गई।

किसी सुन्दर स्वप्नको इच्छा करनेपर दुबारा देख सकना और इच्छानुसार ही उसकी कुछ गहराइयोंमें भी जा सकना एक अत्यन्त सुखद अनुभव

है। इस प्रकारका अनुभव स्वप्नकी सार्थकताको सिद्ध नहीं तो कुछ न कुछ पुष्ट अवश्य करता है। स्वप्नकी सार्थकताको नहीं तो, उस स्वप्न देखनेवालेकी इच्छाकी सार्थकताको तो वह अवश्य ही कुछ न कुछ सिद्ध कर देता है।

क्या आपको कभी इस प्रकारका—किसी इच्छित स्वप्नको अधिक विस्तारके साथ दुबारा देखनेका अनुभव हुआ है ?

मेरे कुछ मित्रोंको, और एक-आधबार सम्भवतः मुझे भी ऐसा अनुभव हुआ है। लेकिन इस लेखमें या इस मालाके अगले लेखोंमें मुझे स्वप्नों और इच्छाओंकी सार्थकताकी बातें नहीं कहनी हैं। स्वप्नों और इच्छाओंका मेरे और आपके जीवनमें कैसा स्थान है, मैं स्वयं अच्छी तरह नहीं जानता[1] और जिन बातोंका मेरे और आपके दैनिक जीवनसे सीधा, महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं है, उनमें मेरी रुचि भी नहीं है।

उस आदमीने पहली बार जो सपना देखा वह स्वप्न न होकर सच्ची घटना होती तो उससे यह अभिप्राय तो निकाला ही जा सकता था कि ये तीनों व्यक्ति उस आदमीसे कुछ कहना चाहते थे।

और दूसरी बारके दर्शनसे यह भी थोड़ा-बहुत अनुमान लगाया जा सकता है कि ये सभी किस प्रकारकी बात कहना चाहते थे। उनके शब्द पहले जितने ही होते हुए भी उनकी मुखाकृति और दृष्टि से वह आदमी अनुमान लगा सकता था कि वे स्नेह और अनुकम्पा की ही कोई बात उससे कहना चाहते थे।

---

१. वैसे, मैंने कहीं पढ़ा है कि हमारे आर्य पूर्वजोंको मध्य एशिया से भारतकी ओर बढ़नेकी पहली प्रेरणा एक स्वप्न-द्वारा ही प्राप्त हुई थी। सम्राट् अशोकको, एक गहरी निराशाके समय स्वप्न-जैसी अवस्था में ही अपने कार्यक्रमके उज्ज्वल भविष्यका दर्शन हुआ था। स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्रिय पताकामें अशोकके धर्म-चक्रका स्थान सम्भवतः उस सम्बन्धमें भी कुछ सार्थकता रखता है। अस्तु, यह केवल प्रसंगवश है।—लेखक।

उन तीनोंके बोले हुए तीन विभिन्न शब्दोंका एक सर्व-निष्ठ अर्थ अवश्य था; और वह था, 'मुझे आपसे कुछ कहना है, और कोई प्रिय बात कहनी है।'

और इन पंक्तियोंके लेखक, मुझको भी इनके पाठक, आपसे कुछ कहना है।

उस आदमीकी दृष्टिमें उन तीनों व्यक्तियोंका जो मूल्य था, वह आपकी दृष्टिमें मेरा नहीं हो सकता। उस तरुणीका निमंत्रण-भरा सौन्दर्य, उस शासकका कृपा-पूर्ण सामर्थ्य और उस जन-नायककी आकर्षणशील बुद्धिमत्ता मुझमें संसारके किसी भी व्यक्तिके लिए नहीं हो सकती; फिर भी उन तीनों मूर्तियोंके और मेरे कथनोंमें एक सजातीय वस्तु आपको मिलेगी।

उन मूर्तियोंने उस आदमीसे केवल एक-एक शब्द कहा, और उसे सोचना पड़ा—'उन्हें मुझसे कुछ कहना था, कोई प्रिय-सी बात! लेकिन वे कह नहीं पाये।'

मैं आपसे अगले लेखोंमें हजारों शब्द—सम्भवतः पच्चीस हजारके लगभग शब्द कहूँगा; और उन्हें सुनकर आपको भी सोचना पड़ेगा,—'इस लेखकको कुछ कहना था, सम्भवतः कुछ अच्छी-सी बातें ही; लेकिन यह कह नहीं पाया!'

इस 'कहनेकी' और कहकर भी 'कह न पानेकी' सार्थकता उस स्वप्न-दर्शीकी तरह सम्भवतः आप भी देखेंगे।

इस लेखमालाकी अगली पंक्तियोंको पढ़कर उनके शब्दोंसे बाहर आपको स्वयं ही कुछ सोचना पड़ेगा।

यह सोचना आपके लिए प्रिय भी होगा और अच्छा भी!

●

सवाल बनाम सिगरेट

"साहब, इस समय एक सवाल है।"

"सवाल क्यों ? सिगरेट क्यों नहीं ? मैं सवाल नहीं चाहता, मुझे सिगरेट दो।" बिछौनेपर पड़े हुए घायल कप्तानने अपने नौकरकी बातका उत्तर दिया।

नौकरने सफ़ेद दवाके सफ़ूफ़में लपेटकर एक सिगरेट कप्तानके पाइपमें खोंसकर सुलगा दी। वह सिगरेट पीने लगा। नौकर दूसरे काममें लग गया। सिगरेटका धुआँ गलेमें उतरते ही उसके सीनेके घावका दर्द एक-दम हलका हो गया।

कप्तानको लड़ाईके मोर्चेपर गहरी चोट आई थी और उसका स्वामि-भक्त नौकर किसी प्रकार उसे मैदानसे उठाकर उसके घर ले आया था। फ़ौजकी वह टुकड़ी दुश्मनकी गोलियोंसे लगभग भून ही दी गई थी, जो घायल सिपाही मैदानमें गिरकर जीवित भी बचे थे उन्हें भी वहीं पड़े-पड़े कुछ समय बाद दम तोड़ना पड़ा था। दुर्भाग्यवश घायलोंको उठाने और उनकी चिकित्साका कोई प्रबन्ध नहीं हो पाया था। इन कप्तान साहबके अपने घर जीवित पहुँच जानेका ऊँचे फ़ौजी अधिकारियोंको पता तक न था और वे इनकी गिनती मरे हुए सिपाहियोंमें ही कर चुके थे।

कप्तानके पास एक दवा थी जिसका धुआँ सिगरेटमें लपेटकर पीनेसे शरीरका कोई भी दर्द कुछ घंटोंके लिए तुरन्त दूर हो जाता था। इसी दवाके सहारे वह निश्चिन्त भावसे अपने गाँवके घरमें आराम कर रहा था।

हर दूसरे-तीसरे घंटे कप्तानको सिगरेट देनेकी उस नौकरको आज्ञा थी। अगली बार जब वह सिगरेट देने आया तब फिर उसने कहा—

"साहब, एक बात—"

"बात कुछ नहीं। सिगरेट लाओ और मौज करो। तुम्हें कोई चीज़ चाहिए ?"

"नहीं साहब, लेकिन—"

"तब फिर लेकिन वेकिन कुछ नहीं। सिगरेट लाओ और अपना काम करो।",

नौकर जानता था कि साहबको ज़रा भी अधिक बोलनेके लिए प्रेरित करना उनके लिए हानिकारक होगा। विवश होकर वह चुप हो जाता था।

सिगरेटकी दवा कई दिनसे चलते-चलते अब समाप्त हो आई थी, और गाँवके जिस डाक्टरने वह दवा बनाई थी वह मर चुका था। वह दवा अब कहाँसे आये, और दवा न आ सके तो कप्तानको शहरके अस्पतालमें स्थायी रूपसे रोग-निवारणके लिए किस तरह पहुँचाया जाय, ये ही प्रश्न नौकरके मनमें चक्कर लगा रहे थे, और इन्हें ही वह कप्तानके सामने रखना चाहता था। लेकिन कप्तानके कठिन स्वभाव और हठधर्मी के कारण वह अभी तक अपनी बात उसके सामने नहीं रख पाया था।

अगली बार कप्तानको सिगरेट देते हुए नौकरने कहा—

"साहब, यह आखिरी सिगरेट है।"

"लाओ आखिरी सिगरेट, यह पहली जैसी ही अच्छी है।" कप्तानने उसके हाथसे सिगरेट लेते हुए कहा और धुआँ उगलने लगा।

तीन घंटे बाद उस कप्तान, और उसके नौकरपर जो कुछ बीती उसका अनुमान आप भी कर सकते हैं।

चिकित्सा विज्ञानका एक अंग है जिसे तात्कालिक चिकित्सा या पहला सहारा First Aid कहते हैं।

इस पहले सहारेसे बीमारी या चोट थोड़ी देरके लिए प्रायः दब जाती है और पीड़ितको कुछ आराम मिल जाता है, लेकिन यह पहला सहारा रोगको दूर नहीं कर पाता। इस पहले सहारेका दीर्घ काल तक सहारा लिया जाता रहे और कष्टके स्थायी निवारणका प्रयत्न न किया जाय तो यह पहला सहारा बहुत हानिकारक भी हो सकता है। रोग बाहरसे दबकर

भीतर ही भीतर और तेजीसे फैलकर शरीरको, और भी घातक हानि पहुँचा सकता है।

लेकिन आजकी दुनिया अपने सामाजिक, व्यापक जीवनसम्बन्धी रोगोंके मामलेमें ऐसे पहले सहारोंके ही पीछे पड़ी हुई है।

दुनियाके लोग आमतौरपर अपनी समस्याओंको सोचते नहीं, उनके सम्बन्धमें कुछ सुनते तक नहीं, केवल उनसे एकदम स्वतन्त्र और निर्बन्ध हो जाना चाहते हैं। उन समस्याओंसे एकदम बच जाना चाहते हैं।

वे कहते हैं 'हमें रोटी चाहिए, जमीन चाहिए, दूसरोंपर इतना-इतना अधिकार चाहिए।'

वे इन चीजोंके लिए आपसमें संघर्ष करते हैं। इन्हें पाते हैं और खोते हैं। फिर पाते हैं, फिर खोते हैं। उनके संघर्षोंका अन्त नहीं होता।

"तुम्हारी समस्याओंका हल रोटी, जमीन और अधिकारोंके लिए पारस्परिक संघर्षमें नहीं, संस्कृति, धर्म, ज्ञान और कलाके विकासमें है।" कोई उनसे कहता है।

"संस्कृति, धर्म, ज्ञान और कला फ़ुर्सतके समयकी बातें हैं। इन चीजों-का भी हम थोड़ा-बहुत विकास कर ही रहे हैं। लेकिन यह संघर्षका युग है। इस समय तो हमारा मुख्य काम सिर पर आई हुई लड़ाईको जीतना है; रोटी, जमीन और अधिकारको ही पहले अपने हाथमें सुरक्षित करना है।" वे कहते हैं।

और फ़ुर्सतका समय कभी नहीं आता। उनका संघर्ष और संघर्षका उद्देश्य कभी पूरा नहीं होता।

जितने समयसे वे गिर-गिर पड़ती बालूकी दीवारको उठानेका प्रयत्न करते आये हैं, उतनेमें शरीफ़ मिट्टीके दस घर बना सकते थे। लेकिन हर बार जब उस दीवारका कोई हिस्सा गिर जाता है तब वे कहते हैं, "बस इतना ही हिस्सा तो गिरा है। दूसरी मिट्टीकी पूरी दीवार बनानेकी अपेक्षा इसे सुधार देनेमें कम समय लगेगा।"

जब उनसे कोई कहता है! "साहब, कला—"

तो वे कहते हैं, "कला क्यों ? व्यवसाय क्यों नही !"
जब उनसे कोई कहता है ! "साहब, धर्म—"
तो वे कहते है, 'धर्म क्यों ? आधुनिक राजनीति क्यों नहीं ?"
जब उनसे कोई कहता है, "साहब, सांस्कृतिक शिक्षा—"
तो वे कहते हैं, "सांस्कृतिक शिक्षा क्यों ? उद्योग क्यों नहीं !"
जब उनसे कोई कहता है, "साहब, प्रेम—"
तो वे कहते हैं, "प्रेम क्यों ? स्त्री क्यों नहीं ! (या कोई कोई : "पुरुष क्यों नहीं !")
जब उनसे कोई कहता है। "साहब, शान्ति—"
तो वे कहते हैं, "शान्ति क्यों ? विजय क्यों नहीं !"
जब उनसे कोई कहता है, "साहब, एक सवाल—"
तो वे कहते हैं, "सवाल क्यों ? सिगरेट क्यों नहीं ?"

●

मैं मार्ग बनाता हूँ

पिछले लेखमें मैं कुछ 'सामूहिक'-सा हो गया हूँ, लेकिन मेरा अभिप्राय सामूहिकसे कहीं अधिक ऐकिक या व्यक्तिगत है। जो बात समूहपर लागू होती है वह केवल इसलिए कि वह पहले एक-एकपर लागू होती है।

आपकी कुछ समस्याएँ हैं—पैसा सम्बन्धी, प्रभाव-सम्बन्धी और प्रेम-सम्बन्धी। प्रभावसे मेरा मतलब समाजके साथ आपके प्रिय या अप्रिय सम्बन्धोंसे है, प्रेमसे मतलब यहाँपर केवल विपरीत जाति—पुरुषके लिए स्त्री और स्त्रीके लिए पुरुष—के प्रति आकर्षणसे है।

निस्संदेह ये हमारे समाजकी, और इनमेंसे कोई न कोई व्यक्तिगत रूपमें आपकी निजी भी समस्याएँ अवश्य हैं।

इस लेखमालामें मैं पहले लेखके परम बुद्धिमान्, लोक-प्रिय मित्रका अभिनय स्वयं करना चाहता हूँ।

मैं मानता हूँ और आपको भी मानना चाहिए कि स्वप्नकी उन तीनों मूर्तियोंमें सबसे ऊँचा पद उसीका था—मैत्री-पूर्ण बुद्धिमत्ता शक्ति और सौन्दर्यसे ऊपरकी वस्तु है।

मैं आपको अत्यन्त सहृदयता और सहानुभूतिके साथ ऊँची बुद्धिमत्तासे भरी कुछ बातें इस लेखमालामें बताना चाहता हूँ।

तब फिर मैं संसारका एक अत्यन्त सहृदय और बुद्धिमान् व्यक्ति हूँ। निस्संदेह मैं हूँ, और आपको अभी बताता हूँ।

अगर भारतकी सबसे ऊँची पार्लमेंटके विचारक अपनी किसी अत्यन्त जटिल राष्ट्रिय या अन्तर्राष्ट्रिय समस्याको सुलझानेके लिए मेरे पास मेरे कैलास आश्रममें आना चाहें तो मैं उन्हें यह नहीं लिखूँगा, "नहीं, नहीं साहब, इस मामलेके लिए आप मेरे पास न आइए। मैं कोई राजनीतिज्ञ

या विशेष बुद्धिमान् नहीं हूं।" बल्कि पूरे हर्षके साथ उन्हें पूरी आशा दिलाते हुए अपने आश्रममें आनेका निमंत्रण दूंगा।

उस सिलसिलेमें मैं परिचय और समीपताके नाते तीन और व्यक्तियोंको निमंत्रित करूँगा। एक तो आगरेके अपने किसी धनिक मित्र, सम्भवतः सेठ भीतल या भार्गव साहबको, दूसरे टीकमगढ़से चतुर्वेदीजीको और तीसरे एक और सज्जनको, जो इन पंक्तियोंको लिखते समय शायद बनारसमें होंगे और जिनका नाम मैं, अगले लेखकी रोचकताके विचारसे, यहाँ न बता-कर आगे किसी लेखमें बताऊँगा।

सेठजी या भार्गव साहब अभ्यागतोंकी मेहमानदारीका खर्च उठा लेंगे। चतुर्वेदीजी, जो अखिल भारतीय पत्रकार संघके अध्यक्ष भी हैं, प्रेसों, पत्रों और व्यक्तियोंके साथ आवश्यक लिखा-पढ़ीका पूरा काम सम्हाल लेंगे, और वह तीसरे सज्जन सभाकी मुख्य कार्यवाहीका सुन्दरता और सफलतापूर्वक संचालन कर लेंगे। इस सबमें खर्चकी रकम अगर सेठजी या भार्गव साहबकी समाईसे किसी कारण बढ़ जायगी तो वे अपनेसे बड़े धनपतियोंसे जितनी भी चाहें रकम वसूल कर लेंगे क्योंकि क्षेत्रके नाते उनकी उनतक पहुँच है। मामला दूसरे पत्रकारोंकी सहायताका पड़ जायगा तो चतुर्वेदीजी देश-विदेशके अनेक बड़े पत्रकारोंका सहयोग भी ले सकेंगे। और मेरे निमंत्रित तीसरे सज्जनको अपनेसे बड़े किसी विचारकके सहारेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यह मेरा पूरा विश्वास है। उनकी बुद्धिमत्ताकी विशेषता यह है कि दूसरोंकी समस्याओंका हल निकालनेमें कभी भी अपनी बुद्धिको दूसरोंकी बुद्धिके आगे या ऊपर नहीं रखते। वह दूसरोंकी समस्या का हल अपनी ओरसे कभी नहीं बताते, बल्कि उनकी ही बुद्धिको उनकी समस्याकी ओर एकाग्र और नुकीली होनेके लिए विवश कर देते हैं। दूसरोंके मामलेमें स्वयं उन्हें ही बुद्धिमान् बना देनेकी कला उन्हें बहुत अच्छी तरह आती है।

भारतकी सबसे ऊँची पार्लमेंटके विचारकोंकी समस्या उन विचारकों-के अतिरिक्त दूसरा कोई—संसारका कोई भी राजनीतिज्ञ, महात्मा, देवता

या ईश्वर—नहीं हल कर सकता और वे स्वयं उसे अवश्य ही हल कर सकते हैं, मेरा यह पूरा विश्वास है। इस बातको उन विचारकोंके सामने स्पष्ट रूपमें दिखा सकनेका यथेष्ट अभ्यास मुझे नहीं है लेकिन मेरे उन तीसरे अतिथिको है।

पार्लमिंटके उस अवैधानिक अधिवेशनमें मेरा व्यक्तिगत कार्यभाग यह होगा—

१—जंगलसे प्रतिदिन सदैवकी अपेक्षा कुछ अधिक लकड़ी खोजकर लाना। (यह अधिक लकड़ी मुझे प्रतिदिन उन दो-एक नये मेहमानोंके कारण लानी पड़ेगी जिनकी मैं प्रति शाम अपनी रसोईमें दावत किया करूँगा।)

२—वायु-सेवनके समय विचारकोंको आस-पासके रमणीक वनकी सैर कराना।

३—अभ्यागतोंमें जो तैरना न जानते होंगे और तैरना सीखनेके लिए राजी किये जा सकेंगे उन्हें यमुनामें तैरनेके लिए ले जाना।

४—विचारकोंके साथ आये हुए उनके युवक लड़कों और वैसी ही लड़कियोंको (कुछ न कुछ तो इस तरहके 'दूसरी पीढ़ी'के लोग उन प्रौढ़ विचारकोंके साथ आयेंगे ही) हर शाम मेहमानोंकी दावतके बाद अपनी लिखी हुई कोई सुन्दर-सी प्रेम-कहानी सुनाना।

ये चार काम मैं अपने जिम्मे लूंगा, क्योंकि इनके लिए सबसे अधिक उपयुक्त मैं ही हूँगा और मेरे उपयुक्त केवल ये ही काम होंगे।

इस प्रकार आप कुछ न कुछ देख सकते हैं कि उन विचारकोंका बड़ीसे बड़ी समस्याको लेकर मेरे स्थानपर आना विफल नहीं होगा, उन्हें कोई असुविधा भी नहीं होगी।

मेरे भरपूर बुद्धिमान् होनेमें क्या अब भी आपको कुछ सन्देह है ?

भरपूर बुद्धिमान् वह नहीं है जो बहुत जानता है; (सब कुछ तो शायद कोई भी आदमी नहीं जानता) भरपूर बुद्धिमान् वह भी नहीं है जिसका मस्तिष्क हर मामलेकी गहराईमें तेजीके साथ घुस सकता है; बल्कि भरपूर बुद्धिमान् वह है जो ठीक वस्तुको ठीक जगह रखना जानता है।

पैसेका काम पैसेवालेके हाथ, विद्या और प्रभावका काम विद्या और प्रभाववालेके हाथ, मानसिक तीक्ष्णताका काम तीक्ष्ण मन वालेके हाथ ! आप मेरा मतलब देख रहे हैं ?

मेरे पड़ोस और परिचयमें बहुत-से ऐसे लोग हैं जो ज्ञानमें, बलमें, कौशलमें, विद्यामें, प्रभावमें, रूपमें, स्वभावमें, चरित्रकी दृढ़ता और सुन्दरतामें मुझसे आगे और बहुत आगे भी हैं। जब जिस विषयका मामला मेरे सामने आता है, मैं उसी विषयके अपनेसे बढ़े हुए पड़ोसी या परिचितके हाथों वह काम डाल देता हूँ, उस मामलेमें आगे अपना दिमाग़ नहीं अड़ाता, उसके हलका श्रेय भी अपने ऊपर नहीं लादना चाहता। यह कला मुझे आती है। इस कलाके प्रयोगमें जो व्यावहारिक कमियाँ और कठिनाइयाँ है उनकी चर्चा मैं किसीके सामने नहीं करता और स्वयं भी उनसे विचलित नहीं होता, मेरी बुद्धिमत्ताका रहस्य यही है।

मेरी बुद्धिमत्ताका थोड़ा-सा रहस्य यह भी है कि मैं अलग-अलग मामलोंमें बढ़े हुए व्यक्तियोंकी ओर और अपनी दृष्टिकी सीमामें आई हुई वस्तुओंकी उपयोगिताकी ओर अपनी समाईभर पूरी आँखें खुली रखता हूँ और सचमुच मेरी आश्चर्य-जनक बुद्धिमत्ताका बड़ा भंडार उन असाधारण व्यक्तियों और उन अमूल्य वस्तुओंमें ही है। उन असाधारण व्यक्तियोंमें कोई-कोई[1] व्यक्ति तो ऐसे हैं जिनके सम्बन्धमें संसारके बड़े-बड़े कोश-ग्रन्थों—'इनसाइक्लोपीडिया'-ओं ने हास्यास्पद गलतबयानियाँ की हैं और मैं उन्हें उन कोश-ग्रन्थोंके मुक़ाबले कुछ अधिक ठीक जानता हूँ। अधिक ठीक जानता हूँ, क्योंकि उन कोशग्रन्थकारोंकी अपेक्षा मैं उन असाधारण व्यक्तियोंके कुछ अधिक समीप हूँ और इन दिनों भी हर महीने एकबार घंटे-डेढ़ घंटे उनमेंसे किसी-किसीका कुछ निश्चित काम कर देता हूँ।

१. उदाहरणार्थ, काउण्ट सेंट जरमेंन, जिन्हें अनेक पाश्चात्य इनसाइक्लोपीडिआओंने महान् साहसिक और भेदियाके रूपमें चित्रित किया है और जिनसे योरप के अधिकांश राजदरबार पिछली शताब्दीमें चकित रहते थे और जिन्हें कभी न मरने वाला और सब कुछ जानने वाला कहा जाता था।

यह सब सुननेमें आपको कुछ विचित्र, अनहोना, अविश्वसनीय-सा लगता है। है न ? या फिर इससे जान पड़ता है कि मैं कोई बड़ा रहस्यपूर्ण और महान् आदमी हूँ !

मैं वैसा आदमी हूँ या न हूँ, जिन कुछ व्यक्तियों और वस्तुओंके बारेमें जानता हूँ वे निस्सन्देह रहस्यपूर्ण और महान् हैं।

अब आप देख सकते हैं, किस बूतेपर मैंने इस पूरी लेखमालामें उस स्वप्नके तीसरे व्यक्ति, परम बुद्धिमान् मित्र का अभिनय करने—अधिक ठीक शब्दोंमें, आपके समीप तक उसके पहुँचनेका मार्ग साफ़ करने—का निश्चय किया है।

और इसके लिए जो थोड़ी-बहुत सहृदय मित्रताकी आवश्यकता है वह मेरे-आपके घरोंकी ही चीज़ है।

शिकन भी और जवानी भी !

इस लेखमालाके दूसरे, 'सवाल बनाम सिगरेट' शीर्षक लेखमें मैंने एक वाक्य लिखा है जो 'दुनियाके लोग'से प्रारम्भ होकर 'समस्याओंसे बच जाना चाहते हैं' पर समाप्त होता है ।

उस वाक्यका विचार मुझे अपना सात दिनका समय और सात दिनकी आमदनी खर्च करनेपर प्राप्त हुआ है ।

वह विचार मुझे पिछले दिनों दिल्ली जाकर वहाँ आये हुए एक प्रसिद्ध वक्ताका व्याख्यान सुनकर प्राप्त हुआ है ।

यह वक्ता महोदय विश्व-दर्शी और विश्वविख्यात वक्ता हैं ।

एक समय था जब बहुत-से लोग उन्हें कृष्णका अवतार मानते थे; सम्भव है, अभी तक कुछ लोग ऐसे विद्यमान् हों ।

यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । संसारमें, और विशेषकर भारतमें, ऐसे लोगोंकी संख्या लाखोंसे कम नहीं है जो कृष्णके, या कृष्णसे भी ऊँचे किसी अन्य अवतारके साथ अब भी रहते हैं; और कुछ वर्ष पहले तक मैं स्वयं एक ऐसे अवतारकी छत्र-छायामें रहा था जिसे मैं कृष्णसे बहुत ऊपरका अवतार मानता था । मेरा वह विश्वास मेरा अकेला ही नहीं, एक लाखसे ऊपर व्यक्तियोंका विश्वास था ।

उस अवतारका शरीर अब इस संसारमें नहीं है । उस अवतारकी उतनी महानताके पक्ष या विपक्षमें मैं अब कोई निर्णय नहीं दे सकता । इतना अवश्य जानता हूँ कि मेरा वह विश्वास बहुत कच्ची नींवपर स्थित था । फिर भी यह स्पष्ट है कि भक्ति और भावनाका जितना विकास मुझे अपने उस आराध्यके हाथों मिला उतना आजतक किसी भी प्रत्यक्ष, सदेह व्यक्तिके हाथों नहीं मिला ।

तो जिन वक्ता महोदयकी बात मैं कह रहा हूँ, उन्होंने, जहाँ तक मैं जानता हूँ, अपने आपको कृष्णका अवतार कभी नहीं कहा। वह कृष्णके अवतार हों या न हों, कृष्णका जैसा कहा-सुना आकर्षण उनमें कुछ न कुछ अवश्य है।

एक सुशिक्षिता, सम्भ्रान्त महिलाने, जो मुझसे पहले उन्हें दिल्लीमें देख-सुन चुकी थीं, उनकी बात चलाते हुए मुझसे कहा था, "उनमें वैसी ही मोहनी शक्ति है जैसी पुराने समयमें गोपियोंके प्रति कृष्णमें कही जाती है।"

और इससे भी पहले मैंने इटलीकी भूमिका पर लिखा हुआ एक अंगरेजीका उपन्यास पढ़ा था, जिसकी एक महिला पात्रीने अपनी किसी संगिनीको सचेत करते हुए, इन्ही वक्ता महोदयका नाम लेते हुए कहा था, "तुम उनकी सभामें जा तो रही हो लेकिन सावधान! उनपर मोहित न हो जाना!"

इस प्रकार आप देख सकते हैं कि उनके सम्बन्धमें मोहित होने-होआनेकी इतनी गहराई तक धँसी चर्चाएँ निराधार नहीं हो सकतीं।

इस समय उनकी आयु सम्भवतः ५२ वर्षकी है।

मेरा मुख्य काम लेखनका है और मैं ध्यान-पूर्वक देखता आया हूँ कि मेरे लेखनकी प्रवृत्ति केवल सौन्दर्य और यौवनकी ओर ही है। इसलिए स्वभावतया अपने पासके नगर दिल्लीमें इन वक्ता महोदयके आगमनका समाचार पाकर मैंने सोचा, "यौवन और सौन्दर्यकी दिशाओंमें लिखते रहनेके लिए यह आवश्यक है कि मैं स्वयं आजीवन सुन्दर और युवा बना रहूँ। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो बावन वर्षकी अवस्थामें इतना सुन्दर और आकर्षक बना हुआ है कि लोग, विशेषकर महिलाएँ ('और उससे भी अधिक विशेषकर पुरुष' मेरे एक मनोविज्ञानशास्त्री मित्रका कहना है) उसे देखते ही उसपर इतनी असहाय-सी मुग्ध हो जाती हैं! उसका चेहरा रूप और यौवनका आकर्षणों-भरा आकार ही होगा। ठीक ऐसे ही आकर्षक चेहरेकी आवश्यकता मुझे भी है, जिसमें ढलती आयुकी कभी एक शिकन भी न आने पाये, जिसके होठोंमें कभी भी जीवनके किसी कटु रसकी असुन्दर

रेखा न खिंचने पाये । यह मेरी एक मनमें समाई हुई समस्या है । उस आकर्षक व्यक्तित्वको देख-सुनकर मुझे अपने लिए उसके अनिवार्य रूप और यौवनका भेद लेना चाहिए ।'

और तदनुसार दिल्ली जाकर मैंने उन्हें देखा-सुना ।

लेकिन उनकी वक्तृता-सभामें पहुँचकर, सभा भवनमें उनके प्रवेश करते ही मैंने देखा, उनके चेहरेपर ढलती आयुकी शिकनें भी थीं और होठोंमें जीवनके कटु-रसों—श्रम, थकान, और पिछले सप्ताहकी अस्वस्थता–की रेखा भी थी ।

मुझे निराशा हुई । उनसे अधिक सुन्दर, स्वस्थ, प्रसन्न और बावन वर्षकी अवस्थामें भी चिकने चेहरेवाले व्यक्ति तो मैं पहले ही अनेक देख चुका था ।

लेकिन दूसरे ही क्षण, अपने आसनपर बैठते ही, उनके होठोंमें फूटकर मुसकानकी एक रेखा सारे सभा-भवनमें छा गई । उपस्थित जनोंमें शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसके हृदय और आँखोंमें वह रेखा प्रतिबिम्बित न हो उठी हो ।

उस मुसकानके बाद उनके मुखसे शब्द निकले, विचार निकले, और बीच-बीचमें वक्ता-सुलभ भाव भंगियों और मुस्कराहटोंका दौर चलता रहा ।

मैंने उनकी पूरी बातचीत ध्यान और सावधानीके साथ सुनी और जो कुछ और जैसे कुछ उन्होंने कहा उसका विस्तृत विवरण मैं यहाँ दे सकता हूँ । लेकिन उसकी चर्चा मेरी इस समयकी बातके प्रसंग से बाहर, और बहुत कम महत्त्वकी होगी ।

उल्लेखनीय और अधिक महत्त्वकी बात तो वह प्रश्नात्मक सँदेसा था जो मुझे उनकी पहली होठोंवाली स्वागत-रेखामें मिला । उसने मेरी समस्या को मोड़कर उसका रूप ही बदल दिया । मैं सोचने लगा :

'मैं चेहरेकी शिकनोंसे क्यों बचना चाहता हूँ ? सुन्दर और युवा रहनेके लिए ही न ? लेकिन मेरे सामने यह एक व्यक्तित्व है जो अपने चेहरेपर वैसी शिकनें लिये हुए भी रूप और यौवनके आकर्षणोंका सबल

केन्द्र बना हुआ है। उसका-सा आकर्षण दुर्लभ है। यहाँ यह एक व्यक्तित्व है जिसकी मुसकराहटमें तीन वर्षके शिशुका स्निग्ध माधुर्य है, जिसके शब्दों और चेष्टाओंमें तीस वर्षके युवकका यौवन भरा आकर्षण है और जिसके अभिप्रायोंमें तीन सौ वर्षके सिद्धका ज्ञान-गर्भित संदेश है।

मैं सोचने लगा। यौवन और सौन्दर्य चेहरेकी शिकनोंके अधीन नहीं है। उनका एक-दूसरेसे कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। एककी मौजूदगीमें दूसरा भी मौजूद रह सकता है, एककी अनुपस्थितिमें दूसरा भी अनुपस्थित रह सकता है।

मेरी समस्याका रुख पलट गया। मैंने देखा, मैंने उसके पहले अपनी समस्याको पूरे तौरपर पहचाना ही नहीं था। मैं सुन्दर और युवा रहना चाहता था और उसके लिए केवल चेहरेकी शिकनोंसे बचना चाहता था।

बावन सालकी आयुपर पहुँचनेमें मुझे उतनी ही देर है जितनी देरमें एक लड़की जन्म लेकर अपने पूरे यौवनके द्वारपर पहुँच सकती है। फिर भी चूंकि मैं जरा दूरदर्शी व्यक्ति हूँ, इसलिए अभीसे मैं उन शिकनोंकी चिन्ता कर रहा था!

लेकिन चेहरेकी शिकनोंसे बचकर भी मैं आगे रूप और यौवनसे वंचित हो सकता हूँ, यह मैंने कभी नहीं सोचा था, यद्यपि सैकड़ों ऐसे व्यक्तियोंपर मेरी दृष्टि पड़ चुकी थी जो चेहरेपर शिकनोंके न होते हुए भी रूप और यौवनसे एकदम खाली थे।

मैं सोचने लगा! मैंने अपनी समस्याओंको कभी पूरे तौरपर नहीं सोचा था। दुनियाके लोग आमतौरपर अपनी समस्याओंको सोचते नहीं, उनके सम्बन्धमें कुछ सुनते तक नहीं, केवल उनसे एकदम स्वतन्त्र और निर्बन्ध हो जाना चाहते हैं; उन समस्याओंसे एक दम बच जाना चाहते हैं।

लोग मथुरा पहुँचना चाहते हैं और द्वारिकाकी सड़कपर दौड़ लगानेके लिए उतावले हो जाते हैं।

उन वक्ता महोदयने मेरी उस दौड़की उतावलीके आगे एक बड़ा-सा 'क्यों ?' लाकर खड़ा कर दिया। मैं रुक गया। उन्होंने मेरी पूछताछका

कोई उत्तर नही दिया, लेकिन अपना उत्तर अपने आप निकालनेके लिए उन्होने मुझे कुछ विवश कर दिया।

वह निस्सदेह एक बुद्धिमान् व्यक्ति है। शक्ति और सौन्दर्य बुद्धिमत्ताके पीछे-पीछे अवश्य चलते है। उन्होने मुझे अपनी बुद्धिमत्ता नही दी, मुझे मेरी ही बुद्धिमत्ता दिखा दी। उनकी बुद्धिमत्ताकी विशेषता यही है॥

उनका नाम है, मिस्टर जे. कृष्णमूर्ति।

और यही वह तीसरे व्यक्ति है जिन्हे निमन्त्रित करनेकी बात मैने पिछले लेखमे कही है।

अपनी कहूँ या आपकी ?

तो फिर आपकी समस्याएँ !

आपके हाथमें आनेवाला प्रत्येक लेख और प्रत्येक पुस्तक व्यर्थ है जबतक कि वह आपकी किसी-न-किसी समस्याको किसी-न-किसी हद तक हल न करे। प्रत्येक छपे हुए पृष्ठसे, जिसे आप हाथमें लेकर अपना कुछ समय भी देनेका निश्चय करते हैं, आप कुछ न कुछ सलाह, सूचना या मनोरंजनकी आशा करते ही हैं। और यदि उससे आपकी यह आशा पूरी नहीं होती तो आपकी एक समस्या बिना हल हुई रह जाती है।

समस्याका प्रयोग मैं यहाँपर जिस व्यापक अर्थमें कर रहा हूँ, उसे कुछ और स्पष्ट करूँगा। सम्भवतः आप उस अर्थसे सहमत ही होंगे।

मेरी चटाईपर इस समय नौ समस्याएँ हैं।

इनमेंसे एक मेरी पत्नीके हाथका लिखा हुआ परचा है, जिसमें इक्कीस चीज़ोंके नाम लिखे हैं। ये इक्कीसों चीज़ें मुझे अगले रविवारको शहर जाकर लानी हैं। अगर ये सब चीज़ें लाई जायँ तो इनके लिए मुझे क़रीब बीस रुपयोंकी आवश्यकता है और मेरे घरमें इस समय केवल सात रुपये हैं। यह परचा मेरी पहली समस्या है।

दूसरा, आजकी डाकसे आया हुआ मेरे एक मित्रका पत्र है, जिसमें उन्होंने लिखा है, "वर्माजी आपके मित्र हैं। आपकी बातका उन्हें पूरा विश्वास है। अगर आप ज़ोर डालकर उनसे सिफ़ारिश कर देंगे तो वह अपनी छोटी बहिनका विवाह मेरे बड़े भाई साहबसे करनेके लिए राजी हो जायँगे। उनके संतोषके लिए कुछ बातें आपको जरा घुमाफिराकर भी कहनी पड़ें तो उसमें कोई हर्ज नहीं है। भाई साहबकी उम्र उन्हें छत्तीस सालकी बताई गई है। उनका स्वास्थ्य पहलेसे बहुत कुछ ठीक है।......पुनश्च :

मनोहरको हमने लिखा है कि वह हमारे पिछले पाँच सौ रुपये आपके पास जमा कर दे। इन रुपयोंको आप अपने खर्चमें ला सकते हैं। आपकी दयासे हम यहाँ बहुत कमा रहे हैं।" इस पत्रका संक्षिप्त अर्थ यह है कि मैं पाँच सौ रुपयेकी रिश्वत लूँ और एक अठारह सालकी स्वस्थ, सुशील, परम रूपवती, पितृहीन, निर्दोष कन्याका विवाह एक पैंतालिस सालके रोगी, आचरण-हीन और कुरूप किन्तु धनवान विधुरसे करा दूँ। यह पत्र मेरी दूसरी समस्या है।

तीसरा भी आजकी ही डाकका एक पत्र है। इस पत्रकी लेखिका हिन्दीकी एक उदीयमती लेखिका और निस्संदेह सौन्दर्यवती तरुणी हैं। मुझे ध्यान है, मैंने इनका चित्र किसी पत्रिकामें देखा है। इस पत्रमें इन्होंने मेरे एक लेखकी देखनेमें कड़ी आलोचना की है; किन्तु उस आलोचना में कड़ाईके बहाने ढेर-सी प्रशंसा, और प्रशंसाकी ओटमें और उससे भी अधिक मुग्धता ही पिरोई हुई है। मेरी इन कृपालु, व्यक्तिगत रूपमें अप-रिचिता पत्र-प्रेषिकाका सम्भवतः अनुमान है कि मैं बहुत अच्छे प्रेम-पत्र लिख सकता हूँ। कुछ भी हो इनके लिए मेरे हृदयमें एक अत्यन्त कोमल भावना जाग उठी है और इनका पत्र भी मेरी एक विशेष समस्या है।

चौथी समस्या भी एक पत्र ही है जो एक लड़का मुझे अभी-अभी दे गया है। इस पत्रमें लिखा है, "महाशयजी, पिछले मंगलवारकी शामको आपने मोतीबाजारमें मेरी जेब काटकर सौ रुपये निकाले हैं। आपको अच्छी तरह पहचान लिया गया है। तीन दिनके भीतर अगर आप रुपये लौटा देंगे, या रात-बिरात मेरी दुकानके किवाड़ोंके छेदमेंसे डाल देंगे तो आपको कोई कुछ न कहेगा। आपके पड़ोसी आपको शरीफ़ आदमी बताते हैं। हमें भी आपकी इज्ज़तका ख़याल है। रुपया न आया तो आपको पुलिसके हवाले करनेका हमारे पास पूरा सबूत है; और पुलिससे भी पहले हमारे नौकर-चाकर बीच बाजारमें आपपर कोई चोट-चपेट करें तो हम उसके जिम्मेदार नहीं हैं।" मेरा पूरा विश्वास है—जैसा कि आपका और इस लेखके सभी पाठकोंका भी होगा—कि मैंने इन पत्र-प्रेषक सज्जनकी जेब नहीं

काटी है और बहुत सम्भव है कि शकलोंके भ्रमके कारण ही इन्हें मुझपर यह सन्देह हुआ है। फिर भी यह पत्र मेरी एक अभ्यागता समस्या है।

मेरी पाँचवीं समस्या एक छपी हुई छोटी-सी अँगरेजीकी पुस्तिका है। ऐसी पुस्तिकाएँ कभी-कभी मेरे अध्यापकके पाससे आती हैं और इनमें मेरे तथा सारे मानव-समाजके जीवन पर अत्यन्त प्रेरणा-प्रद प्रकाश डालने वाली कुछ बातें लिखी होती हैं। इन पुस्तिकाओंसे मुझे बहुत बल और सम्बल मिलता है और इन्हें पढ़नेके लिए मैं बहुत उत्सुक रहता हूँ। इस बार आई हुई यह पुस्तिका मैंने पढ़ी नहीं है। इसे पढ़नेके लिए मैं सबसे अधिक उत्सुक हूँ, पर चटाई पर बिखरी हुई दूसरी समस्याओंसे निवृत होकर ,शांत चित्तसे ही उसे पढ़नेका मेरा निश्चय है। इससे मुझे कुछ नई प्रेरणाओंकी प्रतीक्षा है और निस्संदेह यह पुस्तिका भी मेरी एक प्रमुख समस्या है।

मेरी छठी समस्या अखरोटके चार छिलकेदार फल; सातवीं समस्या, एक केला; आठवीं एक अमरूद और नवीं एक नीबू है। इन चार समस्याओं में सबसे अधिक आसान अमरूद और सबसे कठिन समस्या अखरोटकी है। अखरोट मुझे बहुत कुछ बल लगाकर तोड़ने पड़ेंगे तब मैं उनकी गिरीका अभीष्ट स्वाद ले सकूंगा। नीबूको तराशकर, उसकी दो फाँकें करके उसके भीतरका रस जो निकलेगा, वही मेरी उस समस्याका अभीष्ट हल होगा। केलेका छिलका और भी आसानीसे दूर करके उसके स्वादिष्ट भागका स्वाद मैं ले सकूंगा; और अमरूदकी समस्याको हल करना इतना सुगम होगा कि उसे समस्याका नाम देते भी संकोच होगा। बिना चाकूसे तराशे केवल दाँतोंके प्रयोगसे ही मैं उसका स्वाद ले सकूंगा।

अपनी चटाई पर आये हुए अखरोट, नीबू, केला और अमरूदको भी मैं समस्याएँ कहता हूँ। निस्संदेह, ये भी समस्याएँ ही हैं और इनका रस, स्वाद या उपयोग ही इन समस्याओंका हल है। मैं समस्याका हल चाहता हूँ, समस्या नहीं। अखरोट और अमरूद जैसी छोटी-छोटी समस्याओं को मैं केवल उनके प्रत्याशित हलके कारण ही अपने समीप आने देता हूँ। उनका हल—स्वाद और रस —मुझे प्राप्य न हो तो वे मेरे लिए

जटिल और निराशाप्रद गात्र-समस्याएँ हों और उनमें मेरी कोई रुचि नहीं हो। लेकिन इन अखरोट-अमरूद आदिके सामने मेरा बल, बुद्धिमत्ता और सौभाग्य इतने प्रबल है कि मैं इन समस्याओंको समस्या ही नहीं मानता और इनका हल अपनी एक हलकी-सी चेष्टासे ही निकाला हुआ देखता हूँ। फिर भी ये चारों मेरी समस्याएँ हैं, जिस प्रकार पूर्वोक्त पाँच मेरी समस्याएँ हैं। ये चार मेरी प्रिय और बहुत छोटी समस्याएँ हैं; वे पाँच मेरी कुछ बड़ी समस्याएँ हैं; उनमें से कुछ प्रिय हैं और कुछ अप्रिय। प्रिय समस्याओंसे मैं स्वादिष्ट रस और लाभ प्राप्त करना चाहता हूँ। अप्रिय समस्याओंको निचोड़कर उनका कड़वा रस बाहर फेंक देना चाहता हूँ। ये नवों मेरी छोटी या बड़ी, प्रिय या अप्रिय समस्याएँ हैं। निस्संदेह ये सभी समस्याएँ हैं।

और इन सबसे अधिक व्यापक और देर तक ठहरने वाली मेरी दसवीं समस्या इस लेखकी पूर्तिकी है, जिसका प्रभाव दूसरी नवों समस्याओंके प्रभावोंके शांत हो जानेपर भी आपपर और कुछ औरोंपर भी थोड़ा-बहुत किसी-न-किसी रूपमें बना रहेगा।

इस प्रकार मेरे जीवनकी प्रत्येक छोटी या बड़ी, प्रिय या अप्रिय परिस्थिति और उससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु, जिससे मैं किसी-न-किसी परिणामकी आशा करता हूँ, मेरी एक समस्या है।

और आपके भी जीवनकी प्रत्येक परिस्थिति—छोटी या बड़ी, प्रिय या अप्रिय, जिससे आप किसी न किसी रस या परिणामकी आशा करते हैं—आपकी एक समस्या है।

समस्याकी इस परिभाषाको आप पूर्णतया नहीं तो किसी आंशिक रूपमें अवश्य ही स्वीकार करेंगे।

यह हो सकता है कि छोटी समस्याओंपर कुछ सोचने-कहनेकी ओर आपका ध्यान न हो और उसके लिए फुर्सत भी न हो। इसलिए आप अपनी सभी परिस्थितियोंको अपनी समस्याएँ स्वीकार करते हुए भी केवल कुछ बड़ी और व्यापक समस्याओंपर ही—वे प्रिय और अप्रिय दोनों प्रकार की समस्याएँ होंगी—विचार करना पसंद करेंगे।

तो फिर आपकी वे समस्याएँ क्या हो सकती हैं ?

पैसेकी समस्या, प्रभावकी समस्या, प्रेमकी समस्या। इन्हींको कुछ अलग अलग शब्दोंमें जीवन-निर्वाहकी, स्वास्थ्यकी, समाज द्वारा आदर-सत्कार और सहयोगकी, यशकी, विकासकी, परिवारकी, और स्वीकृत तथा पुरस्कृत प्रेमकी समस्याएँ कह सकते हैं।

मेरे एक युवक मित्र लड़कियोंके एक स्कूलमें संगीतके अध्यापक हैं। एक बार ऊपर लिखी-जैसी बात मेरे मुँहसे निकलनेपर उन्होंने कहा था: 'इधर देखिए, आप सभी आदमियोंको चरित्रके एक ही धरातल पर नहीं रख सकते। आपने मनुष्यकी जो समस्याएँ गिनाई हैं उनमेंसे प्रेम-सम्बन्धी मेरी क़तई कोई भी समस्या नहीं है। जो बात कुछ लोगोंपर लागू होती है, उसे सभी पर लागू करनेकी भूल आपको न करनी चाहिए।' मेरे यह मित्र कट्टर वेदपाठी आर्यसमाजी हैं। सम्भव है, इनकी प्रेम-सम्बन्धी कोई समस्या न हो, सम्भव है आपकी भी वैसी कोई समस्या न रह गई हो। लेकिन मोटे तौरपर इन्हींमें से कुछ-न-कुछ समस्याएँ लोगोंकी हुआ करती हैं, यह मानने में आपको विशेष अड़चन न होगी।

मैं अपने ज्ञान और अनुभवके आधारपर आपकी समस्याओंपर कुछ उपदेशपूर्ण एवं पथप्रदर्शक प्रकाश डालना चाहता हूँ।

लेकिन क्या मेरा उस दिशामें कुछ कहना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा ? क्या मैं आपकी समस्याओंको ठीक-ठीक जानता हूँ ?

उन्हें मैं नहीं जानता। लेकिन अपनी समस्याओंको मैं जानता हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, मेरी समस्याएँ एक मनुष्यकी समस्याएँ हैं।

आप भी एक मनुष्य हैं। एक मनुष्यकी समस्याएँ आपकी भी समस्याएँ हो सकती हैं। इस प्रकार मेरी समस्याएँ आपकी भी समस्याएँ हो सकती हैं। आपकी समस्याओंपर नहीं, अपनी ही समस्याओंपर प्रकाश डालनेकी स्थितिमें मैं हूँ। मैं या संसार भरमें कोई भी दूसरा व्यक्ति आपकी ऐन समस्याओंको जानकर उनपर प्रकाश नहीं डाल सकता, यह मेरा विश्वास है।

तो फिर लिखने और कहनेमें अधिकसे अधिक अच्छी बात जो मैं

कर सकता हूँ वह यही है कि अपनी व्यक्तिगत समस्याओंपर आपके सामने कुछ प्रकाश डालूँ । ऐसा करनेसे सम्भव है कि आपकी कुछ समस्याओं पर भी कुछ प्रकाश पड़ जाय ।

अपनी समस्याओंपर प्रकाश डालनेका मेरा स्पष्ट तात्पर्य यह है कि मैं जो कुछ कहूँ आपके या किसी अन्यके बारेमें न कहकर अपने बारे में ही कहूँ ।

यही बात मुझे बेहद पसंद है । मैं केवल अपने बारेमें ही लिखना चाहता हूँ । लेकिन मेरे एक साहित्यिक मित्रका कहना है कि यदि मैं अपने बारेमें लिखूंगा तो लोग उसे पसंद नहीं करेंगे, पढ़ना भी पसंद नहीं करेंगे । उनका यह कहना अनुभवसे ठीक ही दीख पड़ता है । अपनी ही कहनेवाले की बात सुनना लोग पसंद नहीं करते । कुछ बड़े आदमियोंको छोड़कर जो विशेष प्रसिद्धि पाकर आत्म-कथा लिखनेके पदपर पहुँच गये हैं, अन्य सभी लोगोंके मुखसे आत्म-चर्चाकी बातें सुनते हुए लोग ऊब उठते हैं । ऐसे लोगोंकी आत्म-चर्चाओंमें स्वभावतया आत्म-प्रशंसा और अपने निर्णयोंका मूल्यांकन उचित मात्रासे कहीं अधिक होता है । इसी तथ्यको दृष्टिमें रखकर आमतौर पर प्रसिद्धिके 'आत्म-कथा-लेखन-पद' तक पहुँचनेके पहले विचारशील लेखक अपने सम्बन्धमें चुप रहकर ही अपने विनय-भावका परिचय देते हैं ।

लेकिन मैंने इस प्रचलित नियमका एक अपवाद बनकर केवल अपने बारेमें ही और यथासम्भव अपनी समस्याओंके सिलसिलेमें अपनी अच्छाइयों के पहलूपर ही लिखनेका निश्चय किया है । मेरा विश्वास है कि मेरी अच्छाइयोंसे ही आपकी समस्याओंपर भी सम्भवतः कुछ प्रकाश पड़ सकता है, और मेरी बुराइयों या कमियोंका आपके सामने आना व्यर्थ है ।

लेखनकी मेरी यह दिशा और शैली ही, सम्भव है, मेरी विशिष्ट मौलिकता सिद्ध हो और आगे चलकर मुझे कुछ प्रसिद्धि भी दे जाय । मेरी यह दिशा और शैली आपको अप्रिय या उबाने वाली होगी, ऐसी कोई विशेष आशंका मेरे मनमें नहीं है ।

●

आप रावियन बनेंगे ?

पिछली शताब्दीमें अमरीकामें एक सज्जन हुए जिनका नाम था डेविड ग्रेसन।

उन्होंने अपनी समस्याओंको कुछ विशेष खूबीके साथ हल किया और ऐसा करनेमें स्वभावतया उनके भीतर कुछ विशेष अच्छाइयाँ आ गई।

जब किसी आदमीमें कुछ विशेष अच्छाइयाँ आने लगती हैं तो वह अवश्य ही एक अच्छा लेखक बनने लगता है—यदि लेखकीसे भी ऊपरके किसी अन्य काममें वह न लग जाय। निस्सन्देह अच्छा लेखक बननेका सबसे सीधा नुस्खा है: अच्छा बनना और फिर अपने सम्बन्धमें लिखते रहना। आप यह बात लिखकर रख ले सकते हैं।

डेविड ग्रेसनने अपनी समस्याओंको हल करनेके सिलसिलेमें सादे, स्वतंत्र, ग्रामीण जीवनको अपनाया और अपनी समस्याओंको जिस प्रकार हल किया उसकी चर्चा वर्णनात्मक, कथात्मक, कल्पनात्मक, रूपकात्मक हर एक ढंगसे अपने लेखोंमें की।

उन्होंने केवल अपनी और अपनोंकीही समस्याओंपर प्रकाश डाला और सन्तोष, मित्रता और समझदारीकी खोज और प्राप्तिके लिए सरल किन्तु महान् साहससे काम लिया। ठीक ही, उन्होंने अपनी पुस्तकोंके "समझदारी के साहसिक प्रयोग," "सन्तोषके साहसिक प्रयोग", "मित्रता के साहसिक प्रयोग" जैसे ही कुछ नाम रखे।[1]

उनके इन लेखोंसे स्वभावतया बहुत लोगोंकी व्यक्तिगत समस्याओं पर प्रकाश पड़ा। बहुतसे लोग डेविड ग्रेसनके प्रशंसक और यहाँ तक कि अनुयायी भी हो गये। वे सादे, स्वतंत्र और खुली वायुके जीवनके रागी

---

१. ग्रेसनकी तीन पुस्तकोंके नाम ये हैं—"ऐडवेंचर्स इन अंडर-स्टेंडिंग", "ऐडवेंचर्स इन क टेन्टमेंट", "ऐडवेंचर्स इन फ्रेंडशिप"।

बन गये। उन्होंने ग्रेसनके सिद्धान्तोंके समर्थनमें ग्रेसन क्लब, ग्रेसन पुस्तकालय और ग्रेसन सभाएँ खोल दीं। वे अपने आपको ग्रेसनके नामपर ग्रेसोनियन कहने लगे।

पिछले साल टीकमगढ़में चतुर्वेदीजीने मुझे डेविड ग्रेसनसे परिचित कराया।

ग्रेसनकी दो-तीन पुस्तकोंका एक-एक अध्याय पढ़ते ही मैंने भी ग्रेसोनियन होना स्वीकार कर लिया।

ग्रेसोनियन बननेकी सुविधाएँ मुझे पहलेसे ही मिलने लगी थीं। शहर छोड़कर डेढ़ साल पहलेसे ही मैं एक रमणीक नदी-तटके छोटे-से गाँवमें आ बसा था। मैं और मेरी पत्नी, यही मेरा अविभाजित और अगुणित परिवार था। मैं हफ्तों बिना मिर्च-मसालेका खाना खाकर रह सकता था और मेरी पत्नीको विवाहमें आई हुई सुन्दर रेशमी साड़ियाँ प्रायः बक्सके भीतर ही बन्द रखना पसन्द था।

मैं ग्रेसोनियन बन गया। इसके लिए कहीं नाम लिखानेकी या कोई फ़ीस भेजनेकी आवश्यकता न थी।

लेकिन मेरे ग्रेसोनियन बननेका यह अर्थ नहीं है कि मैं ग्रेसनकी या किसीकी भी हर एक बातका अनुयायी हूँ। निस्सन्देह ग्रेसनकी या किसी की भी समस्याएँ बहुत कुछ सजातीय होते हुए भी मेरी व्यक्तिगत समस्याओं से भिन्न हैं और अपनी समस्याओंका सविवरण हल मैं ही अपनी स्वतंत्र बुद्धि और योग्यताके सहारे निकाल सकता हूँ। उनसे या किसीसे भी मैं हर बातमें सहमत भी नहीं हूँ। उदाहरणार्थ ग्रेसन महोदयकी मित्रता वाली पुस्तकके पहले अध्यायकी उस बातसे मेरा उदारतापूर्ण विरोध है, जिसमें उन्होंने एक ऐसी संस्थाका कुछ कम आदर-सा किया है जिसका मैं स्वयं सदस्य हूँ। मेरा अनुमान है कि उस संस्थाके सम्बन्धमें मैं उनसे अधिक जानता हूँ। लेकिन ऐसी बातोंसे मेरे ग्रेसोनियन होनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती।

अब इस सारी चर्चाका अभिप्राय मेरा एक अत्यन्त विनम्र प्रश्न है।

प्रश्न है—क्या आप रावियन बनना स्वीकार करेंगे ? इस लेखको लिखनेसे पहले पिछली शाम मैंने अपने एक मित्रसे इस लेखके सोचे हुए विषय पर कुछ चर्चा चलायी थी। मेरा अभिप्राय सुनकर उन्होंने कुछ उपदेशपूर्ण स्वरमें कहा था—

"आप—आप चाहते हैं कि लोग ग्रेसनकी तरह आपके भी अनुयायी बनें और आप इस बातको लेख द्वारा जनताके सामने भी रख दें ! आपके इस साहससे मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। ग्रेसन एक महान् लेखक और साधक था। लोगोंका उसका अनुयायी बनना स्वाभाविक था। लेकिन ग्रेसन भी लोगोंके सामने यह प्रस्ताव रखनेका साहस नहीं कर सकता था कि वे ग्रेसोनियन बनें और उसके नामपर पुस्तकालय और सभाएँ खोलें। आपकी योग्यता और प्रसिद्धि ग्रेसनकी योग्यता और प्रसिद्धिका सौवां भाग भी नहीं है। अगर आप सचमुच इस तरहकी महत्त्वाकांक्षा रखते हैं और प्रहसनसे भिन्न किसी गंभीर लेखमें ऐसा प्रस्ताव रखनेका भी आपका निश्चय है तो मैं नहीं समझता लोग किन शब्दोंमें आपके इस महान् साहसका समर्थन करेंगे।"

मित्रके इस कथनपर मैंने विचार किया। मैंने देखा कि सचमुच लोग मेरे लेखमें इस प्रस्तावको पढ़कर मुझे बहुत नादान या बेहद अहंकारी समझेंगे। ग्रेसनके सामने मेरी योग्यता, और योग्यता नहीं तो कमसे कम प्रसिद्धि, तो निर्विवाद रूपमें सौवें भागसे अधिक नहीं है।

सोच-विचारके पश्चात् मैंने निश्चय किया कि मैं उस—लोगोंके रावियन बननेका प्रस्ताव रखने वाले—लेखको लिखूँगा ही और जैसा कि आप पढ़ आये हैं वह लेख मैं ऊपरकी पंक्तियोंमें लिख चुका हूँ।

इस प्रस्तावपूर्ण लेखको पढ़कर यदि आप या मेरे कोई अन्य पाठक मुझे अहंकारी, अपनी पात्रताके बाहर यशका लालची और एकदम 'छोटे मुँह बड़ी बात' कहने वाला समझेंगे तो मैं अपनी इस बड़ी बातको आपकी या उनकी इच्छानुसार सन्तोषजनक रूपमें छोटा कर दूंगा।

ऐसा करनेके लिए मुझे इस लेखकी किसी बात को काटने या वापस लेनेकी आवश्यकता न होगी; मैं केवल उस बुद्धिमान आदमीके उपायसे काम लूँगा जिसके सामने काग़ज़पर एक लकीर खींचकर एक दूसरे बुद्धिमानने कहा था, 'इस लकीरको बिना काटे छोटा कर दो ।'

पहले बुद्धिमानने रबड़ या चाकूका सहारा नहीं लिया और उस लकीर को छोटा कर दिया । उसने केवल उस लकीरके पास उससे बड़ी एक दूसरी लकीर खींच दी; पहली लकीर छोटी हो गई ।

आप देख रहे हैं, अपने सम्बन्धमें कही हुई किसी भी बातको आप के सन्तोषके लिए छोटा करनेका मेरे पास यह उपाय है कि मैं अपने सम्बन्ध में पहलेसे भी बड़ी कोई और बात कह दूँ । कहनेके लिए ऐसी बातें मेरे पास बहुत-सी हैं ।

लेकिन मेरा अनुमान है कि मुझे ऐसा नहीं करना पड़ेगा क्योंकि मेरे इस लेखको पढ़कर मुझे सचमुच बहुत नादान अथवा अहंकारी समझने वाले लोग कोई नहीं होंगे । और अगर कोई होंगे भी तो वे वही होंगे जिन्हें शब्दोंके अर्थ तो आते हैं किन्तु उनसे बने हुए वाक्योंका अर्थ लगाना नहीं आता ।

पुनश्च :

यह लेख मैंने अपनी कापीपर पूरा करके रखा ही था कि मेरे एक मित्रने कमरेमें प्रवेश किया और बिना किसी लोकाचारके उसे उठाकर प्राइमरी क्लास रूमके स्वरमें पढ़ गये । पढ़कर उन्होंने कहा—

"आपको घुमा-फिराकर बातोंको पेच देनेकी कला आती है, और मैं समझता हूँ कि इस लेखमें और कुछ नहीं, केवल आपका अहंकार ही बोल रहा है ।"

मैंने कहा—"सम्भव है, मेरा अहंकार ही इसमें बोल रहा हो; लेकिन 'कौन बोल रहा है' की खोज पड़तालमें आप 'क्या बोल रहा है'को सुनने-समझनेके लिए अपने कान खुले रखना भूल जाते हैं । यह आजकल के कान-वारोंके बहरेपनका एक बढ़ता हुआ लक्षण है ।"

मित्रने कहा—"मैने ध्यानपूर्वक आपका लेख पढ़ा है। इसमें मेरे पल्ले कुछ पड़ा नहीं।"

मैंने कहा—"आपके, या किसी भी पाठकके पल्ले कुछ डालनेका काम मेरा, और मेरी रायमें किसी भी भलेमानस लेखकका, नही है। मेरा काम तो इतना ही है कि मैं लोगोंको अपने-अपने पल्लेकी चीजोंको टटोलने के लिए कुछ प्रेरित कर दूँ।"

इन मित्रका भतीजा अठारह वर्षका एक नवयुवक, जो मेरे लेखोंकी नकलमें मेरी मदद करनेके लिए पहलेसे ही बैठा था, और जो अपने चचा के मुखसे मेरे इस लेखको अभी सुन चुका था, उन्हींको लक्ष्यकर बोल उठा—

"इस लेखका मतलब मैं यह समझता हूँ कि संतोष, समझदारी, और मित्रताके प्रयोगके लिए भी साहसकी आवश्यकता है और साहस-पसंद लोगोंको इनकी ओर भी ध्यान देना चाहिए। डेविड ग्रेसनकी उन तीनों पुस्तकोंको पढ़नेका मुझे लालच हो आया है और मैं समझता हूँ कि अगर मैं अपने जीवनकी समस्याओंको स्वयं सुलझाने लग जाऊँ तो यह चाचीजी स्वयं ग्रेसोनियन बनने और दूसरोंको रावियन बनानेके बगैर ही हरीशियन बनना भी पसंद करेंगे।"

और मैं चुप होकर सोचने लगा कि लेखोंको समझनेके मामलेमें मेरे हम-उम्र मित्रसे उनका भतीजा यह हरीश कितना अधिक बुद्धिमान है!

●

मैं सोचने लगा

पिछले कुछ दिनों मेरे कुछ समीपवर्ती मित्रोंको मेरे सम्बन्धमें एक बड़ी चिन्ता रही।

उन्हें भय हुआ कि परलोक और अगले जन्ममें मेरी दिलचस्पी अगर इसी तेजीसे बढ़ती जायगी तो मैं इस दुनियामें अपने जन्मभरके लिए बेकार हो जाऊँगा।

उनका यह भय निर्मूल नहीं था। सचमुच जन्म-जन्मान्तर और सूक्ष्म लोकों, सूक्ष्म शरीरों और मनु-मन्वन्तरोंके सम्बन्धमें मेरा अध्ययन और चिन्तन बढ़ चला था और अपने साहित्यिक तथा आर्थिक विकासकी ओर मेरा ध्यान घट चला था।

जब आदमी परलोक और परजन्मकी खयाली दुनिया में भटकने लगता है तब वह व्यावहारिक जीवनके लिए प्रायः निकम्मा हो जाता है। यह एक आंखों-देखी सचाई है। हमारा भारतवर्ष और हमारी हिन्दू जाति आज दुनियाकी दौड़में जो इतनी पिछड़ी हुई दिखाई देती है उसका बहुत कुछ कारण उसकी ऐसी खयाली, अव्यावहारिक, धार्मिक रुचि और प्रवृत्ति ही है—मेरे मित्रोंने बताया।

यह एक सचाई है, लेकिन मेरा अनुमान है, एक ग़लत सचाई है। मेरे इस अनुमानकी सार्थकताको आप इस लेखमालाके—और कुछ-कुछ इस लेखके भी—अंत तक पहुँचते-पहुँचते देख लेंगे।

मित्रोंने कहा "तुम एक ऐसी चीजके पीछे पड़ रहे हो जिसका अस्तित्व सम्भव है हो, सम्भव है न हो। लेकिन इस धुनके पीछे उस चीजकी सम्हालकी ओरसे आंखें फेर रहे हो जो वास्तवमें, प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने है।"

मैंने उत्तर दिया, "आप लोग ऐसी चीजके पीछे पड़ रहे हैं जो वास्तवमें

प्रत्यक्ष आपके सामनेसे खिसकी जा रही है और किसी तरह भी नहीं रुकेगी; और इस धुनमें उस चीजकी ओरसे आंखें फेर रहे हैं जो सम्भव है न न हो, लेकिन सम्भव है, हो भी !"

मेरे मित्रगण हँस पड़े। उन्होंने मेरे इस उत्तरकी प्रशंसा करते हुए बताया कि यह एक सुन्दर, 'विटी'—हाजिर जवाबीका-कलात्मक, रसात्मक, और काव्यात्मक उत्तर है और इसमें थोड़ी बहुत 'ओरिएंटल फिलासफ़ी'—प्राच्य दार्शनिकता—भी है।

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मेरे मित्रोंका मुझपर तरस बढ़ता गया। इस 'तरस' का प्रधान कारण यह था कि मैं सौ रुपया महीना कमाता था, दो सौ रुपया कमा सकता था और अब केवल पचास ही कमाने लग गया था। लेखक मैं पहले-से ही था, लेकिन मेरे लेखनका स्तर गिर गया था और इस गिरावटका कारण मेरा आर्थिक अभाव ही माना जाता था। मेरी अधिकांश रचनाएँ कहानियाँ ही मैं उन दिनों लिख रहा था——'अस्वाभाविक' 'अकलात्मक' 'निरर्थक' 'जटिल' 'भारी' 'बच्चोंकी-सी' और 'ऐतिहासिक रूपसे ग़लत' कह-कह कर अनेक पत्र-सम्पादकों द्वारा लौटाई जाने लगी थीं। मेरे मित्र भी इन सम्मतियोंसे प्रायः सहमत थे। वास्तविकताकी दुनियामें रहकर अपनी साहित्यिक प्रवृत्ति और आर्थिक स्थितिको ठीक रखनेका उनका स्नेह-पूर्ण अनुरोध बढ़ता गया।

विवश होकर मैंने अपनी 'परलोक-प्रवृत्ति' के समर्थनमें एक कहानी लिखकर उन्हें सुनाई। कहानी सुनकर मित्रोंने मेरी पीठ ठोंकी। उन्होंने कहा कि यह कहानी सुन्दर, चुभती हुई, रोचक, व्यंग्यात्मक, सरल, प्रवाहपूर्ण, प्रसादमयी, सुबोध और बच्चोंकी भी समझमें आ सकनेवाली है। उन्होंने बताया कि अब मैं कुछ ठीक पटरी पर आ गया हूँ।

इस कहानीसे मुझे मित्रोंकी प्रशंसा तो मिली, पर मेरा असल मतलब हल न हुआ; मेरे प्रति उनके दृष्टिकोणमें कोई परिवर्तन न हुआ।

अन्तमें मैंने एक कविता[1]—कहना चाहिये शायरी—उन्हें सुनानेके लिए लिखी।

"कमाल है—प्रवाह है—हिन्दी वालेका उर्दू पर अधिकार है—अकबरका लहजा है—गिरामोफोनमें जान है—ऊँची उड़ान है—सचमुच तर्ज़े-बयाँमें नज़ाकत है" मित्रोंने कहा।

"नज़ाकत ही नहीं, इस कवितामें कविकी जीवन-सम्बन्धी कुछ घटना भी है।" एक कुछ गहरी पैठके मित्रने मुसकराहट भरी दृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए कहा।

मैं फिर भी असफल हुआ। मेरे अभिप्रायकी ओर उनकी आँख न उठी, मेरे निवेदनकी ओर उनका हृदय सावधान न हुआ। मुझे निराशा हुई।

मैं सोचने लगा।

अपनी परलोक और परजन्मकी रुचियोंमें मेरा पूरा विश्वास था, लेकिन मैं अपने कृपालु मित्रोंको अपना सहमत बनाकर उनकी चिन्ता मिटाना चाहता था। मैं अपनी प्रवृत्तिकी सार्थकता उनके सामने प्रमाणित करना चाहता था।

एक दिन बाज़ारमें मुझे एक अभीष्ट प्रमाण मिल गया।

दूसरे दिन मैं अपने कुछ मित्रोंको बाज़ारमें एक व्यवसायी चित्रकार की दूकान पर ले गया।

---

१. कहानी तो लम्बी थी इसलिए वह यहाँ उद्धृत नहीं की जा सकती, लेकिन यह कविता चार पंक्तियों की थी इसलिए यहाँ दी जा रही है। यह थी :

किया है अर्ज़ मैंने हाले-दिल अपना हसीनों से
मेरे तर्ज़े-बयाँ पर अब वो अपनी राय कुछ देंगे।
न आँखें ही उठायेंगे न आँचल ही सँभालेंगे
गिरामोफ़ोन समझगे सुई की नोक देखेंगे।

चित्रकार और उसका आठ सालका लड़का दोनों ही अलग-अलग मेज़ों पर, काग़ज़के एक-एक लम्बे तख़्तेपर काम करनेमें व्यस्त थे।

लड़का अपने तख़्तेपर धीमें हाथों किन्तु सफ़ाईके साथ, पटरी और पेंसिलके सहारे, कुछ फ़ासलेपर खिंची हुई दो समानान्तर रेखाओंके बीच, एक दी हुई नापके छोटे-छोटे त्रिभुज बनाता जा रहा था। ठीक वैसा ही काम उसका पिता अपने काग़ज़पर कर रहा था।

"तुम इस काग़ज़पर क्या बना रहे हो?" मैंने बालकसे पूछा।

"त्रिभुज बना रहा हूँ। इस सारे काग़ज़ भरमें मुझे इसी नापके छत्तीस त्रिभुज बनाने हैं।" बालकने कहा।

"इन त्रिभुजोंपर फिर तुम क्या बनाओगे?" मैंने उससे पूछा।

"त्रिभुजोंपर क्या बनाऊँगा!" बालकने आश्चर्यके स्वरमें दोहराया, "त्रिभुजोंपर भला क्या बनाया जाता है? इन काग़ज़ोंपर तो सिर्फ़ त्रिभुज ही बनते हैं! मैं यही काम करता हूँ, मेरा दूसरा भाई भी यही काम करता है।"

हम लोग अब चित्रकारकी मेज़के सामने जा-पहुँचे।

वह भी अपने बेटेकी भाँति दो समानान्तर रेखाओंके बीच उसी नापका एक त्रिभुज—यह त्रिभुज उस पंक्तिका तीसरा त्रिभुज था—उसी इतमीनान और सफ़ाईके साथ बना रहा था।

"आप यह क्या चीज़ बना रहे हैं?" मैंने चित्रकारसे पूछा।

मेज़के नीचे पड़ा हुआ एक रंगीन चित्र उठाकर चित्रकारने हमें दिखाया। वह युद्ध-क्षेत्रमें टीलोंपर सजी हुई तोपोंका रंग-बिरंगा चित्र था। इन टीलों और तोपोंकी शकलें—हमने स्पष्ट देखा—उन त्रिभुजोंके सहारे ही बनाई गई थीं। चित्र देशी ग्रामीण कलाका ही चित्र था। ऐसे छः सौ चित्र उसे तैयार करने थे, उसने बताया।

हम लोग दुकानसे बाहर आये।

"लड़का केवल त्रिभुज बनाना जानता है और उन्हें सफ़ाईके साथ बनाता है। बापके मस्तिष्कमें पूरा चित्र है और वह पूरा चित्र बनाता है। लेकिन क्या पूरे चित्रका ज्ञान मस्तिष्कमें होनेके कारण वह चित्रके एक

अंग—एक त्रिभुज—को इतमीनान और सफ़ाईसे बनानेमें असमर्थ या लापरवाह है?" मैंने मित्रोंसे पूछा।

"मैं समझा" एक मित्रने कहा, "आपका मतलब यह है कि आपके सामने पूरे जीवनका, जिसमें परलोक और परजन्म भी सम्मिलित है, चित्र है और हमलोगोंको इस जीवनके ही थोड़ेसे ऊपरी काम धन्धोंका, मानों चित्रकी कुछ प्रारम्भिक रेखाओंका ही पता है। आप बड़े दार्शनिक और तत्त्वदर्शी हैं और हम निपट अंधे मामूली दुनियादार हैं। लेकिन मित्रवर, एसे तर्कों और उदाहरणोंसे जीवनके व्यावहारिक सिद्धान्त नहीं निकाले जाते। आपका दिखाया हुआ यह उदाहरण आपके विरुद्ध ही जाता है। वह चित्रकार पूरे चित्रको जानता है, इसलिए उसकी प्रारम्भिक रेखाओं को भी इतमीनान और सफ़ाईसे बनानेमें समर्थ और सावधान है। लेकिन आप अपने जीवनकी छोटी-छोटी व्यावहारिक बातोंमें असफल और असावधान दीख रहे हैं—अपनी आर्थिक और साहित्यिक स्थितिको सम्हाले रखनेमें डगमगा रहे हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आप पूरे चित्र को तो दूर, जीवनके ऊपरी अधूरे चित्रको भी बनानेके अयोग्य, और इसीलिए समझनेमें असमर्थ, हो रहे हैं। हम तो आपकी दूरदर्शिता तब समझें जब आपकी व्यावहारिक और आर्थिक स्थिति सुखद और सुलझी हुई हों।"

मैं सोचने लगा। मित्रके कथनमें मुझे बहुत जान दीख पड़ी। यदि मैं अपनी दुनियावी स्थितिको ही ठीक नहीं सम्हाल पाया हूँ तो सम्भव है, मेरे परलोक और परजन्म सम्बन्धी विचारोंकी हैसियत हवाई महलों जैसी ही हो!

मित्रोंको सहमत करके उनकी चिन्ता मिटानेका विचार मैंने छोड़ दिया। मैं अपनी चिन्ता करने लगा। यदि आर्थिक संकीर्णता, और और साहित्यिक प्रतिभाका अभाव एवं नगण्यता ही मेरे पास बढ़ती आती हैं तो सम्भव है, मैं ही ग़लती पर हूँ। निस्संदेह ऐसी कोई अप्रिय और और हीनता सूचक वस्तुएँ मेरे पास नहीं फटकनी चाहिएँ—मैंने सोचा।

मैं सोचने लगा।

रातोरात अमीर

उस रात हम—मैं और मेरी पत्नी—पैसोंकी गहरी चिन्तामें सोये।

तीन दिनसे मुझे एक ऐसा कुरता पहनकर बाहर निकलना पड़ता था, जिसकी गुँथी हुई सिलन पर हर मिलने वालेकी नजर पड़ जाती थी। मेरे पास केवल एक धोती रह गई थी, और वह भी इतनी घिस आई थी कि उसे पहनकर बाहर निकलना किसी समय भी धोखा दे सकता था। पत्नीके पास भी जो एक साड़ी मजबूत बची थी वह मोटी और भद्दे डिजाइन की थी। उस दिन हमारे घरमें घी नहीं था, गेहूँका एक छटाक आटा नहीं था और साग खरीदनेके लिए एक घिसा पैसा तक नहीं था। दूध वालेके, धोबीके और बरतन साफ करने वालीके दाम सिर पर चढ़ गये थे। दूसरे-तीसरे दिन वे अपने पैसे माँग भी बैठते थे। और सबसे बड़ी समस्या यह थी कि अगले ही दिन हमारे एक मित्र अपनी पत्नी और गोदके बच्चेके साथ हमारे मेहमान होने वाले थे। मेरी उलझन इसलिए और भी बढ़ी हुई थी कि उनकी पत्नी विशेष सुन्दर और अमीर घरकी लड़की थी।

स्वभावतया उस रात हम पैसेकी गहरी चिन्तामें सोये।

दूसरे दिन जब मैं सोकर जागा तो मेरा हृदय एकदम हलका और बहुत प्रसन्न था।

जागते ही मैंने पत्नीको एक सुन्दर-सा सपना सुनाया और उसे उत्साहित किया कि उस सपनेका फल उसी दिनसे देखनेको तैयार हो जाय।

हमने अपने बन्द बक्सोंकी तलाशी ली। बक्सोंमें जो कपड़े निकले, हमने हिसाब लगाया, वे हमारे कम-से-कम दो साल तक पहननेके लिए काफ़ी थे। इन कपड़ोंका ब्यौरा, जहाँ तक मुझे याद है, इस प्रकार था:—

बढ़िया रेशमी साड़ियाँ ५, जो केवल बाहर और व्यवहारके अवसरों पर ही पहननेके विचारसे चार-चार छह-छह बारसे अधिक नहीं पहनी गई

थीं; मर्सीराइज्ड कुछ कमजोर साड़ियाँ २; जम्पर और ब्लाउज़ ३; पेटीकोट १; घिसी हुई सूती साड़ियाँ २, जिन्हें मरम्मत करके घरमें दो-तीन महीने पहना जा सकता था; मेरी रेशमी कमीजें साबित २; रेशमी कुरता कुछ मरम्मत-तलब १; सूती कुरते साधारण मरम्मत-तलब ४; बनियाइनें कुछ घिसी हुई ३; धोतियाँ घिसी हुई लेकिन काममें आने योग्य ३; मोटी धोती बहुत मजबूत लेकिन कुछ कम अर्जकी १; पैंट बिलकुल मजबूत लेकिन कुछ सँकरे घेरके, अतः नई रुचिके अनुसार अब नापसंद ३; साधारणतया घिसे हुए पैंट २; कोट २; वास्कट १; बिस्तरके चादरे फटे हुए ५; तौलिया साबित १, घिसे हुए ३; मोटी दुसूती कमीज़ १; ऊनी कोट साबित १, मरम्मत-तलब ३, और छोटे पड़े हुए २; ऊनी वास्कट मरम्मत-तलब १; रेशमी अचकन और चूड़ीदार पाजामा साबित १ जोड़ी; तकियेके गिलाफ, मोजे, दस्ताने, मफ़लर आदि अनेक, कुछ काममें आ सकने वाले और कुछ बेकार कपड़े।

हमने हिसाब लगाया कि ये कपड़े किफायत, सादगी और खुली तबीयत से, बिना किसी कंजूसीके पहने जायँ तो हमारे लिए दो सालका काम दे सकते थे।

उस दिन सबेरे ही स्नानादिसे निवृत्त होकर मैंने एक बनियाइन, रेशमी कुरता और धोती बक्ससे निकालकर पहनी, और पत्नीने भी बढ़िया जम्पर और मर्सीराइज्ड साड़ी पहनी, और मेहमानोंके साथ शहरकी सैरको जानेके लिए अपनी एक रेशमी साड़ी मय ब्लाउज, तथा मेरी रेशमी कमीज और एक पैंट निकालकर ऊपर छोटे बक्समें रख लिये।

हमारा पुराना बक्स अभी खुला हुआ ही था कि दूध वाले लड़केने कमरेमें प्रवेश किया। मैंने उसका विशेष आदरके साथ स्वागत किया और अपना एक पुराना ऊनी कोट, जो मेरे लिए छोटा हो गया था, मय एक पुरानी कमीज के उसे भेंट किया। उसने उसी समय उन्हें पहन लिया और अपनी बालटीमें बचा हुआ साढ़े तीन सेर दूध हमारे बरतनोंमें पलट कर खुशीके मारे उछलता-कूदता हमारे जीनेसे उतर गया। वह हमें

प्रति दिन आधा सेर दूध देने आता था लेकिन आज तीन सेर अधिक देकर उसने अपने एक कर्जकी, हौसलेके साथ स्वयं ही अदायगी की थी। दो महीने पहले, उसका विवाह पक्का होनेके उपलक्ष्यमें हमने उससे दावत माँगी थी और उसने हमारी माँग स्वीकार भी की थी, लेकिन उसका वादा दो महीने से टलता आ रहा था। यह कोट और कमीज उसके हिसाबसे उस बिलका चौगुना माल था और हमारे हिसाबसे उस बिलका चौथाई भी नहीं था—वह गरम कोट मेरे लिए तो बिलकुल बेकार ही था।

उस दिन धोबी और बरतन मलने वाली महरीके दाम भी हमने इसी प्रकार की उदार भेंटों द्वारा चुकाये। उनकी प्रसन्नता वाजिब दाम पानेकी प्रसन्नतासे कहीं अधिक थी।

उस दोपहर हमने अपने मेहमानोंका जितनी सुन्दर पोशाकमें स्वागत किया—हमारे एक पड़ोसीकी बादकी टिप्पणी थी—उतने अच्छे कपड़े हमने पहले किसी मेहमानके आनेके समय नहीं पहने थे।

अपने मेहमानोंको उस दिन हमने जीभर कर बढ़िया खीर और साथ में जौ-चनेकी एक-एक मोटी नमकीन रोटी इमलीकी चटनीके साथ खिलाई। हमारी इस सादगी और सुरुचि की हमारे मेहमानोंने हृदयसे प्रशंसा की।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि हमारे भंडार घरमें चावल, चीनी जौ-चनेका आटा और इमली मौजूद थी। जौ-चनेका नाज, चावल और चीनी हमारे घरमें इतनी थी कि हम नमकीन रोटी, मोटा भात—और दूध मिलता रहे तो खीर—पंद्रह दिन तक खाते रह सकते थे।

उस दिन शामको उसी जौ-चनेके आटेके तेलमें भुने हुए करारे परामठों की दावत रही और दूसरे दिन सुबहकी चाय के बाद हमारे मेहमान बिदा हो गये।

चलते समय कायदेके अनुसार यह आवश्यक था कि मेरी पत्नी उनके बच्चेके हाथमें कम-से-कम दो रुपयेका नोट रक्खे।

इस समस्याको भी मैंने पत्नीके साथ एकान्त परामर्श-द्वारा कुछ घंटे पहले ही हल कर लिया था।

चलते समय मेरी पत्नीने अतिथि शिशुको एक छोटा, सुन्दर कटावका दर्पण भेंट किया। बालकने भेंट का दोनों बाहें फैलाकर आतुर आलिंगन किया और दूसरे ही क्षण उस भेंटकी ऊपरी बाटको अपने होठोंमें भर लिया। नोट या सिक्केका वह निश्चय ही कभी इतना सहृदय स्वागत नहीं कर सकता था।

इस दर्पणका मुख भाग उस बालकके लिए जितना प्रिय उपहार था, उसका पृष्ठ भाग उसके माता-पिताके लिए उससे कम प्रिय उपहार नहीं था। दर्पणकी नकली नीले मखमलसे मढ़ी पीठ पर मैंने लाल पेंसिलसे लिख दिया था।

"नावलेकर दम्पतिके नये आध्यात्मिक मित्र सुधाकरके पुण्य-करोंमें रावी-दम्पतिकी श्रद्धा-भेंट।"

इस लिखावट पर दृष्टि पड़ते ही श्रीमती नावलेकरने बिस्तरपर लेटे छोटेसे सुधाकरके हाथोंसे झपटकर वह दर्पण छीन लिया और उसे पढ़कर अपने पतिकी ओर बढ़ाते हुए विस्मित स्वरमें कहा :

इसका मतलब ? ---श्रद्धा-भेंट---आध्यात्मिक मित्र ?"

बालकने इस अभूतपूर्व बर्बरतापूर्ण अपहरणका अपने ऊंचे-से-ऊँचे प्रबल क्रन्दन-द्वारा विरोध किया। भेंट न्याय-संगत अधिकारीको लौटा दी गई। वह फिर उसमें तन्मय हो गया।

तांगा बाहर खड़ा था, लेकिन इस असाधारण अर्थ वाली भेंटपर हमारा वाद-संवाद बीस मिनट तक चला। अन्तमें नावलेकर दम्पतिने स्वीकार किया कि सचमुच वह बालक मेरा श्रद्धेय और उनका आध्यात्मिक मित्र हो सकता है। इसकी पुष्टिमें श्रीमती नावलेकरने बालकके बारेमें उसके जन्मोपरांतसे सम्बन्धित कुछ सुन्दर कथाएँ भी सुनाई और उनका हृदय इस बालकके प्रति एक नई भावनासे पुलकित हो उठा। उनकी आँखोंमें आँसू उभर आये।

सुधाकर ही नहीं; मेरे सभी मित्र दम्पतियोंके नये शिशु मेरे श्रद्धेय और अपने माता-पिताके आध्यात्मिक मित्र होते हैं, और अनेक

माताएँ इसका समर्थन कर सकती हैं—यह बात प्रसंगके सहारेमें यहाँ और जोड़ देना चाहता हूँ।

हमारी उस भेंटका जितना सादर स्वागत हुआ उतना पहले किसी भेंट का नहीं हुआ था।

वह दर्पण हमने अपनी पिछली दिल्ली-यात्रामें दो रुपयेके पाँचवें भाग से भी कममें खरीदा था।

मेरी बहुत बड़ी आर्थिक समस्याका हल मुझे मिल गया था।

मैं रातोरात अमीर हो गया था।

आप विश्वास नहीं करते ?

लेकिन हमारा—मेरा और मेरी पत्नीका—दावा है कि हमारी श्रेणी के लोग जिनकी आमदनी चालीस और साढ़े चार सौके बीच है और जो सदैव मुँहको हाथ दिये हुए रहते हैं, जिस दिन चाहें रातोरात अमीर हो सकते हैं।

अगर वे अपने घरकी चाबियाँ हमारे हवाले करना पसन्द करें तो हम उनकी शर्तिया सहायता भी कर सकते हैं।

अगर आपकी आमदनी घरके हर व्यक्ति पीछे उन्नीस रुपये मासिकसे ऊपर है तो हम आपके भी रातोंरात अमीर होनेका प्रबन्ध कर सकते हैं और इस बातका भी उपाय रख सकते हैं कि आपके घरसे कोई भी भेंटका अधिकारी बिना भेंट न लौटे।

ये पंक्तियाँ मैं उस दिन लिख रहा हूँ जब कि फ़ी रुपया गेहूँका भाव डेढ़ सेर, मोटे नाजका ढाई सेर, नमकका छह सेर, तेलका ६ छटाक, साबुन का १२ छटाक, दूधका दो सेर और चवालीस इंची कपड़ेका दस गिरह है।

आप हमें अपनी चाबियाँ देना पसंद करेंगे ?

●

एक अध्याय और

पैसेकी समस्या---जिसका अर्थ है, आवश्यक वस्तुओंकी कमीकी समस्या---यदि आपकी भी समस्या है तो मैं आपके सामने भी वे ही प्रश्न रखूँगा जो अपने सामने मैंने रक्खे हैं और जिनके प्राप्त उत्तरोंका उपयोग मैंने थोड़ा-बहुत प्रारम्भ कर दिया है।

आप कसे हाथ, यानी तंगदस्त नहीं रहना चाहते। कोई भी नहीं रहना चाहता।

इसका अर्थ यह है कि आप खानेके लिए रुचिकर और पुष्टिकर भोजन चाहते हैं, पहननेके लिए सुन्दर और सुखकर कपड़े चाहते हैं, रहनेके लिए सुविधाजनक स्थान चाहते हैं और प्रियजनोंके सत्कारके लिए उपयुक्त सामग्री चाहते हैं।

इस चाहकी पूर्तिकी राहें मैंने खोज ली हैं। उनपर मैं कितनी दूर तक चल पाया हूँ, यह दूसरी बात है।

पहली राह--मुझे कहना चाहिए, पहला उपाय--यह है कि आप जो-जो कुछ चाहते हैं वह सब बाजारसे, या जहाँसे भी मिले, लाकर अपने घरमें रक्खें। यह सबसे सीधा उपाय है।

और अगर सभी चाही हुई वस्तुओंके लिए आपके पास समाई और पैसा नहीं है तो उन सभी चीजोंके नाम एक लम्बे काग़ज़के टुकड़ेपर लिख लें और हर नामके आगे एक प्रश्नका चिन्ह---?---लगा दें।

इस प्रश्न चिह्नके तीन अर्थ अपने मनमें ये निश्चित करें :

१---क्या मैं समझता हूँ कि इस वस्तुकी मुझे आवश्यकता है ?

२---इस वस्तुसे मैं जो लाभ चाहता हूँ, क्या वह किसी दूसरी अधिक सुलभ वस्तुसे नहीं निकल सकता ?

३—इससे भी अधिक आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करनेके बाद मेरे पास इसे खरीदनेकी समाई बचती है या नहीं ?

ऊपर कहे पहले उपायका सहारा लेनेमें अपने आपको एकदम असमर्थ पाकर मैंने दूसरे उपायका सहारा लिया और आवश्यक वस्तुओंकी एक सूची तैयार की। इन वस्तुओंकी संख्या १६९ निकली !

इनमेंसे कुछ वस्तुएँ स्पष्टतया केवल एक बार खरीदनेपर जीवन भर उपयोगमें आसकने वाली थीं; कुछ की खरीद कुछ वर्षों बाद, कुछकी प्रति वर्ष, कुछकी हर छमाही, कुछकी हर महीने और कुछकी हर सप्ताह या हर दिन आवश्यक थी !

हर एक वस्तुके सम्बन्धमें उस त्रिभागात्मक या त्रिगुणात्मक प्रश्नका उत्तर निकालनेमें मुझे जितना मानसिक श्रम और समय खर्च करना पड़ा उसका मुझे पहले अनुमान नहीं था। लेकिन उनके उत्तरोंसे निकला हुआ परिणाम आश्चर्यजनक था।

१६९ में से १२१ वस्तुओंके सम्बन्धमें मेरा उत्तर था :

"मैं नहीं समझता कि इस वस्तुकी मुझे आवश्यकता है !"

'तब मैंने इस चीजका नाम इस सूचीमें लिखाही क्यों,' मैंने आश्चर्य-पूर्वक एक प्रश्न-पुत्र प्रश्न—पहले प्रश्न से उत्पन्न हुआ एक शिशु-प्रश्न—अपने मनमें उठाया।

खोजते-खोजते इसका जो उत्तर मुझे अपने भीतरसे मिला, वह और भी आश्चर्यजनक था। वह था :

"मैं तो नहीं समझता कि इस वस्तुकी मुझे आवश्यकता है, केवल मेरे कुछ पड़ोसी और प्रियजन समझते हैं कि मुझे इसकी आवश्यकता है।"

मेरी ७१ प्रतिशत आवश्यकताएँ केवल इसलिए मेरी आवश्यकताएँ थीं कि दूसरे लोग उन्हें मेरे लिए आवश्यक समझते थे !

अपने सम्बन्धमें आपकी ऐसी खोज-पड़तालका नतीजा मेरे नतीजेसे अधिक भिन्न नहीं निकल सकता।

अपनी आवश्यकताओंको आप दूसरोंकी बुद्धिसे सोचते हैं—जीवनकी सबसे बड़ी, सबसे अधिक व्यापक विवशता यही है।

लोग सोचते हैं, "आपको यह चीज़ भी चाहिए, वह चीज़ भी चाहिए।"

और आप भी सोचने लगते हैं, "हाँ हाँ, मुझे यह चीज़ भी चाहिए, वह चीज़ भी चाहिए।"

लेकिन अगर आप अपने आप निर्णय करें तो अधिकांश चीज़ोंके लिए यही कहेंगे, "मुझे यह चीज़ नहीं चाहिए, वह चीज़ भी नहीं चाहिए।"

तब वे ही दूसरे लोग कह उठेंगे, "आपको ही नहीं, हमें भी यह चीज़ नहीं चाहिए, वह चीज़ भी नहीं चाहिए।"

आप अपना निर्णय नहीं करेंगे तो दूसरोंके निर्णय पर आपको चलना पड़ेगा; और अपना निर्णय आप स्वयं करेंगे तो दूसरे भी आपके निर्णयपर चलेंगे—यह कुछ पुरानी रीति-सी चली आ रही है।

इस देशमें जब लोगोंने पहले पहल अंगरेजी कोट और पैंट पहनने शुरू किये तब वे कोटके बिना, खाली कमीज़ पर पैंट पहन कर सड़क पर नहीं निकलते थे।

एक दिन किसी मित्रके घर एक सज्जनके कोटको दुर्घटना-वश आग लग गई।

उन्हें दिनोदिन अपने घर वापस लौटना था, लेकिन बिना कोटके पैंट पहन कर सड़क पर निकलना कितना भद्दा और हास्यास्पद था, यह वह जानते थे। मित्रने उन्हें रात होने तक अपने ही घर रुकनेकी सलाह दी।

अँधेरा होनेपर गलियोंमें छिपते-छिपाते वह जैसे-तैसे अपने घर पहुँचे। फिरभी रातमें उन्हें जो भी परिचित और अपरिचित लोग मिले वे उनसे मानो यही कहते जान पड़े: 'महाशय, आपका कोट! मुझे दुःख है, आपके पास कोट नहीं है!' उन्हें भी अपना वह अभाव चुभता रहा।

दूसरी सुबह भी उनके पास कोट नहीं था, लेकिन रातो-रात उन्हें कुछ सूझ सूझ गई थी।

सुबह उन्होंने बिना कोटके कमीज और पैंट पहना और शहरकी—अनुमानतः वह कलकत्तेका शहर था—सबसे चौड़ी सड़क पर निकल पड़े। हर मिलने वाले पर मुसकराना और हरेक 'उदारता-पूर्वक' कतराने वालेको पुकार कर उससे दो बातें करना उन्होंने अपना उस सुबहका रवैया बना लिया।

उस सुबह और उस सड़ककी हवा धीरे-धीरे सारे देशमें कुछ ऐसी फैली कि अधिकांश कोट-पैंट पहनने वाले लोग सड़कों पर बिना कोटके निकलने लगे!

पिछली शाम तक उन सज्जनका विचार था कि उन्हें कोटकी अनिवार्य आवश्यकता है।

उनका वह विचार इसलिए था कि लोगोंका विचार था कि उन्हें कोटकी अनिवार्य आवश्यकता है।

लोग कहने लगे, "ठीक है, हमें भी सड़क पर निकलनेके लिए हर समय पैंटके साथ कोटकी आवश्यकता नहीं है।"

और आज दिन तक कालेजोंके अधिकांश लड़के बिना कोटके ही पैंट पहनकर सड़कों और कालेजोंमें जाते हैं।

मेज, कुर्सी, सोफ़ा, कालीन, टीसेट, सिगरेट केस, ऐश-ट्रे; जूतों, मोज़ों और कपड़ोंकी तीसरी, चौथी और अगली जोड़ियाँ; थरमस, होल्डाल, फाउंटेन-पेन, हैंडबेग, मनीबेग, टुथ-ब्रुश, हेयर आयल, कलाकन्द, पिस्ता, अखरोट, स्नो-क्रीम, टार्च, टिफ़न कैरियर आदि १२१ चीजें ऐसी हैं जिनकी आवश्यकता आप केवल इसीलिए समझते हैं कि दूसरे लोग उन्हें आपकी या अपनी आवश्यकता समझते हैं।

मेरा यह मतलब नहीं कि ये चीजें उपयोगी या आरामदेह नहीं हैं। ये ऐसी हैं; लेकिन तभी जब कि आपके पास इनके लिए पैसोंकी कमी न हो।

मैं अपने निकाले नतीजोंकी बात कह रहा हूँ; आपके नतीजे इनसे कहाँ तक मेल खायेंगे, यह आपके देखनेका काम है।

अब रही बात शेष अड़तालिस सचमुच आवश्यक वस्तुओंकी। इनके आगे भी आप वही प्रश्न का चिह्न लगा रहने दीजिए, बल्कि इनके प्रश्न-चिह्नको ज़रा और बड़ा कर दीजिए।

जिन लोगोंकी आमदनी साढ़े चारसौके मुकाबले चालीसके अधिक करीब है वे मेरे अधिक समीप हैं। । उनके सामने मैं इस विषयके कुछ गहरे प्रश्न रख सकता हूँ। नमूनेके तौरपर—

१—क्या आप समझते हैं कि अंगूर, सेब, काजू, किशमिश, पिस्ता आदि कीमती फल और मेवे इतने स्वादिष्ट और स्वास्थ्यके लिए अनिवार्य हैं कि रेलके तीसरे दर्जेमें सफ़र करनेकी हैसियत रखते हुए भी उनका खाना आवश्यक है? मेरी खोज है कि उनमें —और विशेषकर उन दिनों जबकि ये तोलमें गुड़के मुकाबले बीस गुनेसे लेकर चौगुने तक महँगे बिकते हों— एक विशेष प्रकारका 'जहरीला' विटैमिन होता है। उनका उपयोग अनावश्यक ही नहीं, अधिकांश खानेवालोंके स्वास्थ्यके लिए अदृश्यरूपमें बहुत हानिकर भी है। मेरा विचार है कि इन चीज़ों को तब तक अपने उपयोगसे बाहर रखना चाहिए जब तक आपकी हैसियत अपने घरके प्रत्येक व्यक्तिको एक पाव दूध या आधा सेर मठा देने की न हो जाय।

२—क्या आप समझते हैं कि कमरसे लेकर घुटनों तक—और स्त्रियोंके लिए गलेसे लेकर घुटनों तक —को छोड़कर शरीरके किसी भी अन्य भाग पर एक के ऊपर दूसरा वस्त्र पहनना स्वास्थ्य, सौन्दर्य और शराफ़तके लिए आवश्यक है? मेरी खोज है ऐसा करना स्वास्थ्यके लिए और स्वास्थ्यसे अधिक शराफ़तके लिए और शराफ़तसे भी अधिक सौन्दर्यके लिए अनावश्यक ही नहीं, बाधक भी है। मैं समझता हूँ कि शरीर पर तीसरी पर्तका कपड़ा तब तक न पहनना चाहिए जब तक कि सर्दी या लूसे बचावके लिए उसकी आवश्यकता न पड़े; और आर्थिक दृष्टिकोणसे जब तक कि रेलके पहले दर्जेमें सफ़र करनेकी हैसियत न हो जाय।

३—क्या आप समझते हैं कि अतिथि और सम्बन्धियोंको प्रसन्न और प्रभावित करनेके लिए कोई ऐसा खर्च करना आवश्यक है जो आपके लिए

सहज-साध्य न हो ? यदि आपके हृदयमें प्रसन्नताकी, व्यक्तित्वमें प्रभावकी और घरमें भूखको मिटा सकने वाले भोजनकी कमी रहती है तो मैं आपकी वैसी धारणासे सहमत हो सकता हूँ।

और इनसेभी अधिक गहरी बातें—

क्या आपका निश्चयपूर्ण विश्वास है कि घी के बिना रोटी यथेष्ट स्वादिष्ट और शक्तिदायक नहीं हो सकती ? हमारी शिक्षित श्रेणी के लोगोंका आम विश्वास यही है, लेकिन मुझे इसकी सचाई में संदेह है। ऋषीकेशके उपाध्यायजी पूर्ण स्वस्थ, पैसे वाले और स्वादके पारखी हैं, लेकिन घी का उनके भोजनमें नियमित स्थान नहीं है।

क्या आप समझते हैं कि दफ्तर या दिमाग़का काम करने वालोंके लिए रोटी गेहूँकी ही आवश्यक है और जौ, चने और बाजरेकी रोटी उनका काम नहीं दे सकती ? मेरे प्रयोग इसके विपरीत परिणाम की ओर मुझे ले जाते दीखते हैं।

प्राकृतिक आहार-शास्त्री कहते हैं कि दाल बचपनके बाद बहुत कम खानी चाहिए, हरे सागोंका खूब प्रयोग करना चाहिए, लेकिन मेरा अनुभव है कि जब आधा सेर हरा साग आधापाव दालसे महँगा मिलता हो और उसकी खरीद कठिन जान पड़े तो साग की जगह दालसे बराबर काम चलाते रहनेमें कोई हानि नहीं है। केवल दाल-रोटी खाने वाले मेरे चचेरे भाई-भतीजे अब भी हमारे सगे परिवारसे अधिक स्वस्थ हैं।

इस तरह खोजनेपर आपको उन अड़तालिस चीजोंका भी—वे अड़-तालिस अलग-अलग व्यक्तियोंके लिए कुछ भिन्न भी हो सकती हैं— समाचार नये सिरेसे लेना पड़ेगा।

मैं चाहता था कि इसी लेखमें अपनी उस पूरी सूचीका विवरण भी आपकी जानकारीके लिए रख दूँ; लेकिन ऐसा करना शायद आपके लिए कुछ कम मनोरंजक हो उठेगा, इसलिए उस प्रकरणको छोड़े देता हूँ। यहाँ केवल इतना लिख देना पर्याप्त है कि उन अड़तालीस चीजोंके नाम महत्त्व के क्रमसे लिखने पर मेरी पहली पन्द्रह चीजोंके नाम ये होते हैं :

१–आटा २–ईंधन ३–नमक ४–तेल ५–हजामतके ब्लेड ६–कपड़े धोनेका साबुन ७–शक्कर ८–दाल या साग ९–कागज-पेंसिल आदि लिखनेका सामान १०–डाक टिकट ११–दूध १२–रोशनीका तेल १३–बदनके कपड़े :–दो कुर्ते और दो मदरासी पहनावेकी ढाई गजी धोतियां तथा पत्नीके लिए दो जोड़ी सादे कपड़े १४–जूते १५–मेम्बरीके चन्दे ।

और इसके आगे जो सोलहवीं चीज़ मैंने लिखी, उसके पहले नोट लिखा है :

'इतना यथेष्ट मात्रामें हो जाने पर मुझे अपना सफ़र ड्योढ़े दर्जेमें करना प्रारम्भ कर देना चाहिये।' बत्तीसवी चीजके पहले दूसरे और अड़तालीसवीं के पहले पहले दर्जेमें सफ़र प्रारम्भ कर देनेकी बात भी मैंने लिख रक्खी है।

इस प्रकार आर्थिक समस्याओं सम्बन्धी मेरा नुस्खा यह है :

जब आपको किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो तुरंत उसे ख़रीद लाइये और अगर उसके लिए यथेष्ट पैसे न हों तो सोचिये, 'क्या सचमुच मुझे इसकी आवश्यकता है ?' अगर आपकी आमदनी परिवारके प्रति व्यक्तिके पीछे बीस रुपयेसे ऊपर है तो आपकी कोई सचमुचकी आवश्यकता अपूर्ण नहीं रह सकती !

ये पंक्तियाँ मैं ऐसे समय लिख रहा हूँ (चीजोंके भाव फिर एक बार गिना रहा हूँ) जब कि फ़ी रुपया गेहूँका भाव डेढ़ सेर, मोटे अनाजका ढाई सेर, नमकका छह सेर, तेलका नौ छटाक, साबुनका बारह छटाक, दूधका दो सेर और चवालीस इञ्ची कपड़ेका दस गिरह है।

सजावटके आगे

मैंने अपनी पैसेकी, अर्थात् पैसेसे खरीदी जानेवाली चीज़ोंकी समस्या हल कर ली है।

उस हलको क्रियात्मक रूप देनेमें अभी मेरी क्या क्या कठिनाइयां शेष रह गई हैं, यह एक अलग बात है और यहाँ पर उसकी चर्चासे मेरा या आपका कोई लाभ नहीं है।

तंगी और मँहगाईके इन दिनोंमें पत्र-पत्रिकाओं और उनकी सम्पादकीय टिप्पणियोंमें मध्यम वर्गकी आर्थिक विपत्तियोंकी बड़ी चर्चा आने लगी है। महीनेके पहले सप्ताहमें मिला हुआ उनका वेतन दूसरे सप्ताह तक खर्च हो जाता है और अगले दो सप्ताहका खर्च अगले महीनेकी तनख्वाहकी ज़मानत पर उधार लेकर चलाना पड़ता है। उनके मुकाबले निम्न श्रेणीका मजदूर वर्ग बहुत मज़ेमें है। उसकी अशिक्षितता और मोटे रहन-सहनकी सुविधाएँ ये हैं कि थोड़ा-सा दस्तकारीका हुनर सीखकर वह आसानीसे किसी कारखाने में चार-पाँच रुपये रोजकी मजदूरी कर लेता है और 'शराफ़त'-सम्बन्धी कोई खर्च न होनेके कारण लगभग यह सारी ही रक़म अपने खाने-पीनेके खर्चमें ले लेता है। उच्चवर्ग तो प्रत्यक्ष रूपसे मज़ेमें है ही।

इस मध्यमवर्गकी आर्थिक विपत्तियोंका कुछ भीतरी अनुमान मुझे भी है। गेहूँकी मँहगाईके कारण उन्हें कभी-कभी आधा पेट बिस्कुट और डबल रोटीसे और शेष आधा चायसे भरना पड़ता है। मन-पसंद कपड़ेका पेंट या अच्छे डिजाइनकी एक साड़ीके लिए मन मार कर रह जाना पड़ता है। दफ़्तर जानेके लिए सोलह रुपयेका जूता और बाज़ारके कामोंके लिए आठ रुपयेका चप्पल जब उन्हें खरीदना पड़ता है तब उस महीनेका मकानका किराया अदा नहीं हो पाता। ग्रामोफ़ोनकी सुइयों तक के लिए पैसा न होनेके कारण उन्हें कभी-कभी माथे पर हाथ रखकर उदास बैठना पड़ता है।

रेडियो खरीदनेकी सम्भावनाको ठंडी आहके साथ छः महीनेके लिए और टालना पड़ता है। मेहमानोंकी नियम-बद्ध चाय-पानीके कारण रसोईके घीका बजट काटकर हर महीने डालडासे काम चलाना पड़ता है। अपनी बनी हुई मर्यादाके निर्वाहके लिए उन्हें सचमुच ऐसी अनेक संकीर्णताओं का सामना करना पड़ता है।

पत्रों और सम्पादकीय टिप्पणियोंमें मध्यवर्गकी आर्थिक संकीर्णताकी चर्चा जो लोग लिखते हैं वे मध्यवर्गके ही लोग होते हैं और उनकी आमदनी औसतन दो और साढ़े चार सौके बीच रक्खी जा सकती है।

और मध्यवर्गकी आर्थिक संकीर्णताका जो पहला उपाय उन्हें सूझता है वह यह है कि हमारे गवर्नरका वेतन (भत्तासहित) दस हज़ार क्यों है, अमरीका स्थित भारतीय राजदूतका वेतन साढ़े आठ हज़ार क्यों है, रूसस्थित भारतीय राजदूतका वेतन साढ़े बारह हज़ार क्यों है, सरकारका यह खर्च इतना क्यों है, वह ख़र्च उतना क्यों है! पत्र-पत्रिकाओंमें यह चर्चा कुछ दिनों तेजीसे चलती रही है।

भारतीय राजदूतोंके वेतनोंके निर्णयमें मेरा कोई व्यक्तिगत हाथ नहीं है और अगर उनके वेतन पचहत्तर प्रतिशत कम करके वह रक़म मध्यवर्ग वालोंमें बाँट दी जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन ऐसा होनेसे मध्यवर्गवालोंकी स्थिति सुधर जायगी, इसमें मुझे पूरा संदेह है।

मेरा नौकर या भाई कुछ दिनोंसे दो रोटियाँ अधिक खाने लगा है; लेकिन उसने मेरी बड़ी सेवा की है, वह मुझसे अधिक बलिष्ठ है, परिश्रमी है। मैं उसका सम्मान करता हूँ, उसपर अनेक बातोंके लिए निर्भर हूँ। उन दो अतिरिक्त रोटियोंके लिए मैं उसकी आलोचना करने लगूँ तो क्या यह ठीक होगा? क्या यह मेरी भलमनसाहत, इतने दिनोंके सम्पर्क-ऋण और विचार शीलता के अनुकूल होगा?

मैं यह नहीं कहता कि राजदूतों और अफ़सरोंके खर्चोंमें कमी की माँग करनेका मध्यवर्गवालोंको अधिकार नहीं है—उनके ये वेतन सम्भव है उचित से अधिक हों, सम्भव है उचित हों और सम्भव है उचितसे कम भी हों;

मेरी इस सम्बन्धमें कोई ठीक जानकारी नहीं है और अधिकांश टिप्पणीकार भी इस जानकारीमें मुझसे आगे नहीं हैं। फिर भी मैं यह कहता हूँ कि ऐसी माँग उनकी संकीर्णताओंको दूर करनेका पहला और अधिक कार-आमद उपाय नहीं है; यह दूसरा और कम-कार आमद उपाय हो सकता है। उन्हें पहले पहला और अधिक कार-आमद उपाय करना चाहिए।

व्यक्तिगत रूपमें मैं अपने बीस भारतीय राज-प्रतिनिधियोंके वेतनोंमेंसे दस-दस रुपये घटवाकर अपनी आमदनीमें दो सौ रुपये बढ़ानेकी अपेक्षा अपनी आमदनीमेंसे बीस आने कम करके उनके वेतनोंमें एक-एक आनेकी वृद्धि कर देना अधिक पसंद करूँगा। पिछले साल मेरी आमदनीका औसत ५० रु० १५ आने[1] मासिक रहा है। इतनी आमदनी पर भी अपने स्नेह, कृतज्ञता और सौजन्यके नाते मैं अपने प्रतिनिधियोंके लिए सवा रुपया मासिक सुविधापूर्वक खर्च कर सकता हूँ।

तो फिर जिसकी बात मैं कहना चाहता हूँ वह पहला, अधिक कारआमद उपाय क्या है ?

वह उपाय यह है कि आप अपने आपसे पूछें : 'क्या सचमुच मुझे अधिक वेतनकी आवश्यकता है ?' क्या सचमुच मुझे उन चीजोंकी आवश्यकता है जिन्हें मैं अपने अभिलषित बढ़े हुए वेतनसे खरीदना चाहता हूँ ?'

और इन प्रश्नोंका जो उत्तर आपको अपने भीतरसे मिले उसे ही पत्र-पत्रिकाओं और सम्पादकीय टिप्पणियोंमें लिखें। आपके वैसे लेख आपके और आपके मध्य-वर्गीय समाजके अधिक क्रियात्मक उपयोगके होंगे।

आपके उत्तर जो कुछ होंगे, उनका मुझे कुछ-कुछ अनुमान है।

आप कहेंगे: "हमारी आमदनी हमारे सुख-पूर्वक खाने और सादगीके साथ पहननेके लिए तो काफ़ी है; लेकिन हमें समाजके बीच रहना पड़ता है, रहन-सहनका एक 'स्टैण्डर्ड—हैसियतनामा (!)—निभाना पड़ता है। समाजके बीच अपने दूसरे मित्रों-परिचितोंकी सजी हुई बैठकोंमें जाकर हम

---

१. यह बात सन् ४८ की है। अब मेरी आय १५०) मासिक पर पहुँच गई है।—लेखक।

बैठते हैं; उन्हें अपने घर बुलानेके लिए हमारी बैठक भी उतनी ही सजी हुई---उतनी नहीं तो बीसकी जरा उन्नीस सही---होनी चाहिए। जैसा नाश्ता हम उनके घर करके आते हैं लगभग उसी तरहका उन्हें भी हमारे घर मिलना चाहिए।"

इस प्रकार जब आप किसी मित्रके घर जाते हैं तो समाजमें जाते हैं, उसके घर नहीं। जब आप मित्रको अपने घर निमन्त्रित करते हैं तो समाजमें निमंत्रित करते हैं, अपने घर नहीं! आप समाजमें रहते हैं, अपने घरमें नहीं!

यह समाज क्या है, आपने कभी सोचा है?

मैंने नहीं सोचा। मैं इसे सोचूँगा और अपनी अगली लेखमाला--या अगली पुस्तक--में शायद इसकी चर्चा कर सकूँगा। इस लेखमालामें मैं केवल वे ही बातें कहना चाहता हूँ जिन्हें मैं सोच चुका हूँ। मैं नहीं जानता समाज क्या है, लेकिन मैं अपना घर जानता हूँ, जहाँ मैं रहता हूँ और कभी-कभी मित्रोंको भी बुलाता हूँ। मैं अपने कुछ मित्रोंके घर भी जानता हूँ, जहाँ मैं कभी-कभी जाता हूँ। अस्तु, मुझे प्रसन्नता होगी यदि आपने भी समाजके बारेमें कुछ न सोचा होगा और उसके प्रति अनजान होंगे।

यदि आप अपने मित्रोंको निमंत्रित कर एक खास हद तक सजे हुए कमरेमें न बिठा सकें, एक खास हद तक क़ीमती और स्वादिष्ट नाश्ता उन्हें न करा सकें और एक खास हद तक सुन्दर और क़ीमती कपड़े पहन कर उनके पास न बैठ सकें तो इससे समाजमें आपका पद गिरता है---लोगों पर आपका यथेष्ट प्रभाव नहीं पड़ता।

लोगों पर प्रभाव! हम इस प्रभावके प्रश्न पर आ पहुँचे हैं और इसी प्रश्नको मैं प्रस्तुत लेखमें उठाना चाहता था।

प्रभावकी कामना स्वाभाविक है। प्रभावशाली बननेके सम्बन्धमें मैं कोई उपाय यहाँ लेखबद्ध नहीं कर सकता, लेकिन प्रभावके मार्ग पर बढ़नेका अपना व्यक्तिगत अनुभव आपको बता सकता हूँ। प्रभावकी कामना मुझे भी है; अपने मित्रों-परिचितोंके बीच मेरा प्रभाव है और वह बढ़ भी रहा है।

मैं समाजका एक प्रभावशाली व्यक्ति हूँ। समर्थनमें कुछ बातें यहाँ गिना भी सकता हूँ :—

१—मुरादाबादमें मेरे एक मित्र हैं। उनके पास कार है, कोठियाँ हैं। वह मेरा स्नेह-सम्मान करते हैं और समय मिले तो मेरे पास रहना उन्हें विशेष प्रिय है।

२—मेरे एक स्वल्प परिचित मित्र, जिनसे कानपुरके सभी बड़े रईसोंको उन दिनों वास्ता पड़ता था, अपने ड्राइंग-रूममें अनेक मिलनेवालोंके सामने बैठकर अकेले नाश्ता करते थे, लेकिन मेरे पहुँच जानेपर वह मुझे नाश्तेमें अपने साथ अवश्य सम्मिलित करते थे।

३—मेरे एक मित्र जो भारतके एक तत्कालीन वाइसरायकी एक सभा में उनसे हाथ मिलाकर बैठते थे, एक अन्य महत्त्वपूर्ण, विभिन्न ऊँचाइयोंकी कुर्सियोंवाली, सभामें व्यवस्थानुसार कभी मुझसे ऊँची और कभी मुझसे नीची कुर्सी पर बैठते हैं।

४—संसारके एक महान् व्यक्तिने—जिसकी प्रशंसामें अनेक पाश्चात्य धुरंधर विद्वानोंने अपनी पुस्तकोंमें अध्याय लिखे हैं और जिनके शव संस्कार के लिए स्पेशल ट्रेन द्वारा दक्षिणीसे उत्तरी भारत तक लाया गया था—मेरे विवाह-संस्कारमें पुरोहितका पद ग्रहण किया था।

५—मेरा 'प्रभावशालीपन' मेरे परिचितों तक ही सीमित नहीं है। प्रेम, सौन्दर्य, समझदारी और आध्यात्मिक प्रवृत्ति-सम्बन्धी मेरे विचारों और भावनाओंका मेरे अपरिचितों पर भी, मुख्यतया मेरे लेखों द्वारा 'प्रभावशाली' प्रभाव पड़ता है। प्रमाणके लिए ऊँचे साहित्यकी एक अन्तर्राष्ट्रिय संस्थाके भारतीय विभागके मुख-पत्रने मेरी एक प्रेम-सम्बन्धी कहानीसे प्रभावित होकर लिखा है कि उस कहानीका संसारकी सभी जीवित भाषाओंमें अनुवाद होना चाहिए।

६—और यह लेखमाला भी, जिसे आप पढ़ रहे हैं मेरी उस प्रेम-कहानीसे कम ऊँची और प्रभावशाली नहीं है। इस लेखमालाके सम्बन्धमें वैसी कोई प्रशंसा अभी तक किसी पत्र-पत्रिकाने नहीं की, इसलिए सम्भव है यह आपको

उतनी प्रशंसनीय न जान पड़े। लेकिन यदि आप इस लेखमालाकी समुचित प्रशंसा करना चाहते हैं तो पीटर होवर्ड नामके अँगरेजी लेखककी पुस्तक 'आइडियाज़ हैव लेग्ज़' (अर्थात् 'विचारोंके पैर होते हैं) पढ़ जाइये। यह पुस्तक दो लाखके लगभग बिकी है और मेरी यह लेखमाला उससे कम नहीं है—भले ही हिन्दीमें होनेके कारण इसके पहले संस्करणकी दो हजार प्रतियाँ भी न बिक पायें। निस्संदेह, मेरी यह लेखमाला उस पुस्तकका अनुवाद नहीं है।

इस प्रकार इन छह—पहले पाँच दूसरोंके दिये हुए और छठा मेरा स्वयंका दिया हुआ—प्रमाण-कथनोंसे आप देख सकते हैं कि मैं समाजका एक यथेष्ट प्रभावशाली व्यक्ति हूँ।

लेकिन मेरा घर मेरे मित्रोंके घरसे सजावटमें बहुत भिन्न है। मैं अपने घर उन्हें जो नाश्ता देता हूँ वह उनके दिये हुए नाश्तोंसे बहुत भिन्न है। कुछ लोग कहते हैं कि मेरे घरकी सजावट और मेरे घरका नाश्ता उनके घरकी सजावट और नाश्तेसे घटिया दर्जेके हैं।

हो सकता है, मेरे घरकी ये चीजें घटिया दर्जेकी हों, लेकिन मेरे घरसे जानेके बाद वे स्वभावतया मेरे घरकी बात सोचते हैं और समाजके—अपने दूसरे मित्रोंके—घरसे जानेके बाद समाजकी बात सोचते हैं। मेरे घरका विचार उन्हें अपने घरका भी ध्यान दिलाता है; दूसरे, समाजके अनुरूप घरोंका विचार उन्हें समाजका ही ध्यान दिलाता है।

मेरे घरकी सजावट और नाश्तेको भले ही कुछ लोग घटिया कह लें, लेकिन मेरे प्रभावको वे घटिया नहीं कह सकते।

मेरा प्रभाव मेरे घरकी सजावट और नाश्तेपर निर्भर नहीं है।

क्या आपका प्रभाव उन्हीं पर निर्भर है?

●

हड्डियोंका आदमी या आदमीकी हड्डियाँ

पिछले लेखमें मैंने जो बातें कही हैं उनमें क्या आपको मेरे अविनय आत्म-प्रशंसा और अनुचित अहंकारकी बू आती है ?

यदि आप ऐसा समझते हैं तो सम्भव है आपका यह विचार ठीक हो क्योंकि अविनय और आत्म-प्रशंसाकी प्रवृत्ति दूसरे अनेक लोगोंकी तरह मुझमें भी है; लेकिन उससे भी अधिक ठीक यह है कि आप बहुत अनुदार और अकृपालु हैं।

यदि आप मुझे वैसा समझते हैं तो इसका उपचार मेरे पास यही है कि मैं अपने सम्बन्धमें उन बातोंसे भी बड़ी कोई और बात कह दूं और उसके बाद आपका ध्यान पिछले लेखमें कही बातोंकी ओर आकृष्ट करूँ। तभी आप उन बातोंमें अनुचित बूका अभाव देख सकेंगे।

अपने अधिकारमें आई हुई सबसे बड़ी लकीर मैं कागज पर कभी नहीं खींचूँगा—यह मेरे गुरुजनोंकी दी हुई शिक्षा है; लेखन-कलाके गुरुजनों की भी, और जीवन-कलाके गुरुजनोंकी भी। अपने सम्बन्धमें मैं तभी कोई बड़ी बात कहूँगा जब उससे भी बड़ी दूसरी बात मेरे पास मौजूद होगी। सबसे बड़ी बात मैं कभी नहीं कहूँगा, क्योंकि कह नहीं सकूँगा।

और यदि मेरी उन बातोंमें अनुचित अहंकार और आत्म-प्रशंसाकी बू सचमुच है ही तो क्या इसका यह मतलब है कि मेरी बातोंमें आपके उपयोग की कोई बात नहीं है ? यह असम्भव है कि मेरी बातोंमें बुराइयाँ ही बुराइयाँ हों और कोई अच्छाई न हो।

इस लेखको पढ़ते समय आप मेरे घर पर मेरे मेहमान हैं। जो कुछ मेरे घरमें है, वही मैं आपके सामने रख रहा हूँ। अपने घरमें मैं वे चीजें आपके सामने नहीं रख सकता जो अंचल, नगेन्द्र, बच्चन, जैनेन्द्र या पंतके घर आपको मिल सकती हैं। सम्भव है, उनकी प्रस्तुत की हुई चीजोंमें

भावना, शिक्षा, संस्कृति, कला, मनोविश्लेषणका सौन्दर्य और साथ ही उनका व्यक्तिगत सौजन्य समाजके अधिक अनुरूप होता हो; वे समाजकी आवश्यकताओंको अधिक समझते हों और समाजके अनुकूल चीज आपको दे सकते हों।

लेकिन मैं समाजकी नहीं, अपने घरकी चीज़ आपके सामने रख रहा हूँ। मैं अपने घरकी एक रोटीके साथ आपके खानेके लिए एक छोटी-सी प्यालीमें एक चीज़ आपके सामने रख रहा हूँ।

आप कहते हैं—"यह बहुत खट्टा है, इसमें बूरा बहुत कम है। यह ताजा और कमसे कम खट्टा होना चाहिए। इसमें बराबरका बूरा होना चाहिए। यह बड़े प्यालेमें और जरा ज्यादा-सा होना चाहिये।" आप इसे दही समझते हैं। समाजमें दूसरे मित्रोंके घर आप रोटीके साथ ढेर-सा दही-बूरा खानेके आदी हैं। आप उस चीज़को पसंद करते हैं।

लेकिन यह दही-बूरा नहीं है। यह दहीकी एक विशेष प्रकारकी तेज़, खट्टी चटनी है। इसे रोटीके साथ बहुत थोड़ा-थोड़ा लगाकर खाना उचित है। इसमें कुछ और भी मसाले पड़े हुए हैं। थोड़ा-सा बूरा भी है। यह पेटको दुरुस्त करती है, प्यास लगाती है, थोड़ा खानेमें एक विशेष प्रकारका उत्तम स्वाद भी देती है।

आप लोगोंको और लोग आपको हमेशा दही-बूरा खिलाते हैं; मैं दहीकी चटनी आपके सामने रख रहा हूँ। मैं इतना दही नहीं खरीद सकता कि आपको दही-बूरा खिलाऊँ। मेरी दहीकी चटनीका आप पर जो प्रभाव पड़ेगा वह दही-बूरेके प्रभावसे बहुत घटिया हो सकता है। लेकिन दहीकी चटनीका प्रभाव अलग चीज है और मेरा प्रभाव अलग चीज है। मुझे दूसरेकी चिन्ता है, पहलेकी नहीं।

मेरा प्रभाव मेरे दिये हुए नाश्ते पर निर्भर नहीं है, वह मेरे घरकी सजावट पर भी निर्भर नहीं है। क्या आपका प्रभाव आपके घरकी सजावट और आपके दिये हुए नाश्ते पर ही निर्भर है?

दूसरों पर अच्छेसे अच्छा और अधिकसे अधिक प्रभाव पड़नेकी कामना

आपकी स्वाभाविक है, लेकिन आपका प्रभाव आपके घरकी सजावट और नाश्ते पर निर्भर नहीं है। ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। मैं यह भी कहने के लिए तैयार हूँ कि मेरा आप पर जो प्रभाव पड़ेगा वह मेरे लेखों पर निर्भर नहीं है। मेरे लेखोंका आप पर प्रभाव अलग चीज़ है, मेरा आप पर प्रभाव अलग चीज़ है।

इसे समझनेके लिए आपको पढ़नेसे कहीं अधिक स्वयं सोचना होगा। आप लोगों पर अपना प्रभाव चाहते हैं, यह अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन लोगों पर अपना प्रभाव डालनेके लिए यह आवश्यक है कि आप अपने घरकी सजावट और नाश्तेके प्रभावोंमें ही उन्हें अधिक न उलझने दें। जिस क्षण आप घरकी सजावट और नाश्ते-द्वारा उन्हें प्रभावित न करनेकी बात सोचेंगे उसी क्षण आपका उनपर गहरा और आश्चर्य-जनक प्रभाव पड़ेगा, वे आश्चर्यचकित रह जायेंगे।

यह बात कुछ विशेष अस्पष्ट-सी है। यदि ऐसा है तो फिर स्पष्ट बातोंकी ओर ही आइये।

मान लीजिए कि आप अपने किसी मित्रका स्वागत अपने घरमें समाज की सधाई हुई मर्यादाओंकी चिन्ता न करके अपने सहज-सुलभ ढंग पर करते हैं। अपने वेतन या आयमें अभीष्ट वृद्धि न होनेके कारण आप अपने घरको उतना सजा हुआ और अपने नाश्तेको उतना अमीर नहीं बनाते हैं।

आपका मित्र—मान लीजिए कि आपका नाम श्री कनु भाई है—अपने मनमें कहेगा : 'यह कनुजी तो बेचारे ग़रीब हैं, ठीक हैसियतके नहीं हैं। हमारे अधिक उपयोगके नहीं हैं।'

अगली बार आप जब उन मित्रके घर जायेंगे और आपके पहुँचनेका समाचार पाकर मित्रकी पत्नी नाश्तेका प्रबन्ध करने चलेगी, तब वह आपके मित्र (अपने पति) से कहेगी : "यह लीजिए, एक रुपया। नौकरको भेज कर बाजारसे आठ आनेकी मिठाई और चार आनेका नमकीन मँगवा लीजिए। मैं चाय तैयार करती हूँ। अच्छा हुआ, सुबह घी नहीं मँगवाया, नहीं तो इस समय यह रुपया भी घरमें न निकलता।"

आपके वह मित्र कुछ देर सोचकर पत्नीसे कहेंगे : "यह घीका रुपया घीके रुपयोंमें ही डाल दो। कनुके लिए बाजारसे मिठाई मँगानेकी जरूरत नहीं। यह कोई बड़ी हैसियतके आदमी नहीं हैं। घरमें जो साग-परामठे तैयार हो रहे हैं उन्हें ही खाकर यह खुश रहेंगे। मुझे भी इन्होंने अपने घर ऐसे ही नाश्ते पर बहलाया था।"

इस प्रकार धीरे-धीरे आपके मित्र-जन आपके सत्कारके लिए कोई भी कष्टप्रद, यानी दूसरे खर्चोंमें काट-छाँट कराने वाला टीम-टाम करना छोड़ देंगे। आपके मित्रोंकी पत्नियोंको जब जब मालूम होगा कि बैठक में आये हुए मित्र और कोई नहीं, कनुभाई ही हैं, तो वे आपके सत्कारके सम्बन्धमें बहुत निश्चिन्त हो जायेंगी। आपका स्वागत उन्हें अक्सर दूसरों के स्वागतकी अपेक्षा अधिक सुगम हो जायगा। यदि आप गुणों और योग्यताओंमें उनके पतियोंके दूसरे मित्रोंसे पिछड़े हुए नहीं हैं तो उन्हें आपका सत्कार करना कुछ विशेष प्रिय भी लगने लगेगा।

धीरे-धीरे—मैं मानव-स्वभावकी एक निश्चित प्रवृत्तिके आधार पर ही यह कह रहा हूँ—कुछ जानबूझ कर और कुछ अनजानमें, वे अपने पतियों के दूसरे मित्रोंके लिए भी कष्ट-प्रद टीम-टाम करना कम कर देंगी; और कष्ट-प्रद टीम-टामका रिवाज आपके मित्र-परिवारोंमें घट चलेगा। यह घटाव नाश्तों तक ही सीमित न रह कर घरकी सजावटों तक भी पहुँचेगा। घरकी सजावटों और नाश्तोंमें वह चीज बढ़ चलेगी जिसे कुछ विचारकोंने 'सादगी' का नाम दिया है।

और सादगीका अर्थ स्वाद और सुन्दरताका अभाव हर्गिज नहीं है। बल्कि सादगीमें प्राय: स्वाद भी अधिक रहता है और सुन्दरता भी।

इस प्रकार आपके सहज-साध्य नाश्ते और घरकी सजावटका प्रभाव आपके मित्रोंके घरोंके नाश्तों और सजावटों पर अवश्य पड़ेगा; सहज-साध्यता की ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ेगी।

इसके कुछ प्रमाण भी मिल चुके हैं। जबसे अशोककुमारने सिनेमा-

चित्रोंमें सूट-बूटके बजाय कुर्ता-धोती पहन कर आना प्रारम्भ किया है तबसे क्या वह आपको कम आकर्षक जँचने लगा है ?

इस प्रश्नका अपना उत्तर यदि आपको ठीक न जान पड़े तो अपनी और अपने मित्रों की पत्नियोंसे आप यही प्रश्न पूछ सकते हैं।

सजावट, स्वाद, सत्कार, सुरुचि, सुन्दरता—इन सबका सम्बन्ध सादगी एवं सहज-साध्यतासे है।

अपनी सजावटों और सत्कारोंमें सहज-साध्यताको सुभीतेका स्थान देकर आप अपने समीपवर्ती समाजमें भी इस सहज-साध्यताको प्रचलित कर देंगे। आप समाजको अपने अनुकूल बदल लेंगे। समाजका रहन-सहन आपके रहन-सहनकी ओर झुक जायगा।

और तब अपनी आमदनी बढ़ानेकी चिन्ता और उससे उत्पन्न विवशता का सामना करनेके पहले आपको सोचना पड़ेगा कि वर्तमान आमदनीको किस प्रकार खर्च किया जाय।

अपनी और अपने सवर्गीय मध्यवर्गकी आर्थिक संकीर्णताओंके सम्बन्ध में आपके ऐसे सोच-विचार और व्यवहारका आपके तत्सम्बन्धी लेखों और और सम्पादकीय टिप्पणियोंकी अपेक्षा इस मध्यवर्गीय समाजके लिए कहीं अधिक उपयोग होगा।

आप एक सुव्यवस्थित, सुखी, नये समाजका निर्माण करना चाहते हैं। इसके लिए पहले आपको सुव्यवस्थित, सुखी, नये व्यक्तियोंका और व्यक्तियों से भी पहले व्यक्तिका (स्वयंसे भिन्न और किसका ?) निर्माण करना होगा।

और यह समाज क्या है ? आप किसका नव-निर्माण करना चाहते हैं—समाजका या व्यक्तिका ? किसका अस्तित्व अधिक वास्तविक, अधिक सजीव है—समाजका या व्यक्तिका ?

यदि आप समाजका नया निर्माण करना चाहते हैं तो आपकी दृष्टिमें समाज एक निश्चित, सजीव अस्तित्व है, और उस दशामें अलग-अलग व्यक्तियोंको उस अस्तित्वके अंग, टुकड़े—कह लीजिए उसकी अलग अलग हड्डियाँ—मान सकते हैं।

यदि आप व्यक्तिका नया निर्माण करना चाहते हैं तो आपकी दृष्टिमें व्यक्ति ही एक पूरा, निश्चित, एवं सजीव अस्तित्व है ।

पहली दशामें समाज एक सजीव अस्तित्व है और अलग अलग व्यक्ति उसकी अलग अलग हड्डियाँ हैं और दूसरी दशामें आदमी ही एक सजीव पूरा व्यक्ति है और समाज ऐसे व्यक्तियोंका सम्मेलन मात्र है ।

आप किसकी अधिक चिन्ता करना चाहते हैं—हड्डियोंसे बने हुए व्यक्ति की (सभी आदमी हड्डियोंसे बने हुए व्यक्ति होते हैं) या व्यक्ति (समाज ?) से बनी हुई हड्डियों की ?

आप अगर आदमीकी अवहेलना करके समाज की ही चिन्ता करना चाहते हैं, तो समाज ही आपके लिए पूरा व्यक्ति है और उस दशामें हरेक आदमी उसकी केवल एक निश्चेष्ट हड्डीके बराबर है ।

आप क्या चाहते हैं—हड्डियोंका आदमी या आदमीकी हड्डियाँ ?

यदि आप जीते-जागते हड्डियोंके आदमीकी चिन्ता करना चाहते हैं तो आपको उसे पहले समाजसे अलग रख कर—समाजसे ही नहीं, उसके घर की सजावट और उसके दिये हुए नाश्तेसे भी अलग रख कर—देखना होगा ।
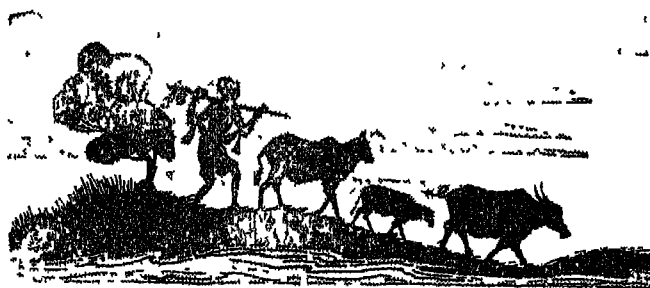
यह प्रेम-समस्या !

आप समाजमें अपना प्रभाव चाहते हैं। आपका प्रभाव आपके घरकी सजावट और नाश्तेके मँहगेपन पर निर्भर नहीं है। नाश्ते और सजावटका प्रभाव अलग चीज है, आपका प्रभाव अलग चीज है।

मैं समाजका एक प्रभावशाली व्यक्ति हूँ। समाजका प्रत्येक व्यक्ति प्रभावशाली है, यदि वह घरकी सजावट और नाश्ते-द्वारा दूसरोंको प्रभावित करनेका विचार छोड़ दे।

कोई सुन्दरी यदि अपने सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहने बिना अपनी नींद की सादी साड़ीमें ही, सोतेसे उठकर आपके पास चली आये तो क्या वह आपको सुन्दर न लगेगी ?

कवियों और रूप-चितेरोंका कहना है कि उस दशामें उसका सौन्दर्य और भी अधिक प्रभावशाली होगा।

बात ही संयोगवश आ पड़ी है तो मैं आपसे पूछूँगा कि यदि कोई सुन्दरी अपनी साड़ी, नींदकी साड़ीमें सोतेसे उठकर आपके पास आ जाय तो क्या आप उसे समीपसे देखना पसंद न करेंगे ?

और यदि इन पंक्तियोंकी पाठिका आप स्वयं ही एक सुन्दरी हैं तो क्या अपनी नींदकी साड़ीमें असज्जिता बैठी हुई आप पास आये हुए किसी सुन्दर पुरुषको समीप से देखना पसंद न करेंगी ?

यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देना अधिकांश धर्म-शिक्षित सुन्दरों और सुन्दरियोंको स्वीकार नहीं होगा।

इसका उत्तर देना भले ही उन्हें स्वीकार न हो लेकिन उस प्रकार पास आये हुए को 'देखना पसंद करना' या 'न देखना पसंद करना' अवश्य स्वीकार होगा।

पहली दशामें, पास आये हुए सुन्दर व्यक्तिसे कुछ और लेनदेनका, और दूसरी दशामें उसके सम्पर्कको दूर करनेका प्रश्न उनके मनमें उठेगा।

अगर ऐसी दशामें इन दो मेंसे कोई प्रश्न आपके मनमें नहीं उठेगा तो यह और इससे आगेका लेख आपके लिए नहीं हैं।

विपरीत सेक्सके—यदि आप पुरुष हैं तो सुन्दर स्त्रीके और स्त्री हैं तो सुन्दर पुरुषके—साथ आपका कोई सम्पर्क हो या न हो, हो तो कैसे हो और न हो तो कैसे न हो; यह एक सार्वजनिक, सम्भवतः आपकी भी समस्या है और इसे, सुविधाके लिए, प्रेमकी समस्याका नाम दे सकते हैं।

पिछले पाँचवें लेखमें मैंने वादा किया था कि इस प्रेमकी समस्या पर अपने व्यक्तिगत हलकी सी मैं चर्चा करूँगा और प्रसंगवश उसका अवसर इस लेखमें आ गया है।

यदि प्रत्यक्ष या कल्पनामें आये हुए किसी सुन्दर व्यक्तिके साथ प्रेम-सम्पर्क स्थापित करनेकी कामना आपके मनमें उठती है और उसकी पूर्तिमें आपको तनिक भी असुविधा या कमी होती है तो यह एक प्रेम-सम्बन्धी समस्या आपके सामने है।

और यदि उस सुन्दर व्यक्तिके प्रेम-सम्पर्कसे बचनेकी कामना आपके मनमें उठती है और उसकी पूर्तिमें तनिक भी असुविधा या कमी होती है तो यह भी एक प्रेम-सम्बन्धी समस्या ही आपके सामने है।

पहले प्रकारकी कामना उस सुन्दर व्यक्तिको प्रत्यक्ष या कल्पनाकी ही आँखोंसे, एक बार और देख लेनेसे लेकर तत्क्षण और तत्स्थान सम्पूर्ण विवाह कर लेने तक की कामना हो सकती है; और दूसरे प्रकारकी कामना उसके सम्पूर्ण मानसिक और शारीरिक सम्पर्कसे लेकर उसकी स्मृति-मात्रसे भी बचनेकी कामना हो सकती है।

इन चारों कोनों के बीच कहीं भी आपकी कोई कामना है तो प्रेमकी समस्या आपकी भी समस्या है। सात वर्ष तकके लड़कों-लड़कियों, अति-वृद्धों, कठिन पीड़ासे पीड़ितों, कुछ प्रकारके पागलों और शायद कुछ महा-त्माओंको छोड़कर आमतौर पर प्रेमकी समस्या मानव-समाजकी एक

व्यापक समस्या है । शरीर-विज्ञान-शास्त्रियोंका कहना है कि लड़कों और लड़कियोंके कंकालों—हड्डियोंके ढांचों—में विभिन्नता प्राय: सात वर्षकी उम्रके बाद प्रारम्भ होती है । इस विभिन्नताके प्रारम्भके साथ उनके परस्पर आकर्षणका भी कोई सम्बन्ध हो तो अस्वाभाविक नहीं ।

यदि प्रेमकी समस्या आपकी समस्या नहीं है तो, मेरा अनुमान है, आप ऊपर गिनाये हुए लोगोंमेंसे पाँचवें प्रकारके ही होंगे ।

थोड़ी देरके लिए यह मान कर कि आप वैसे महात्मा नहीं हैं मैं अपनी व्यक्तिगत प्रेम-समस्या और उसका हल आपके सामने रखूँगा ।

चोदह वर्षकी आयुमें मेरी पहली प्रेम-समस्या मेरे सामने आई । बादमें जो भी प्रेम-सम्बन्धी समस्याएँ मेरे सामने आई उन सबको मिलाकर वह पहली ही तीव्रतम, असह्यतम और साथ ही मधुरतम भी थी । उसने मुझे एक कविता लिखनेके लिए कवि बना दिया । मैंने वह कविता अपने मद्रास-प्रान्त-प्रवासी एक मित्रको लिख भेजी । खेद है, उस कविताकी प्रतिलिपि अब मेरे पास नहीं है ।

प्रेम-सम्बन्धी समस्याओंको हल करना उस समय मुझे नहीं आता था, इसलिए वह समस्या पूरे चार वर्ष मेरे साथ रही ! आगे चलकर समयने ही उसे, पता नहीं किस प्रकार, हल किया ।

उसके बाद ओर भी अनेक छोटी-बड़ी प्रेम-समस्याएँ मेरे सामने आई, और उनमें से अन्तिमने, जिसे तीव्रता, मधुरता और अनिवार्यताकी दृष्टिसे मैं सबसे पहलीके बाद दूसरा स्थान दे सकता हूँ, मुझे ऐसी समस्याओंका हल निकालनेके लिए विवश कर दिया । यह अन्तिम प्रेम-समस्या मेरी आयुके किस वर्षमें आई, यह बतानेमें मेरी कुछ ऐसी सामाजिक असुविधाएँ हैं जिनका अनुमान लगाना आपके लिए कठिन नहीं है ।

पहली बार मैंने इस समस्याको समस्याके रूपमें लिया । इसे हल करनेके लिए सामाजिक क्रान्ति, इच्छा-शक्ति, संकल्प-बल, संन्यास अथवा वैराग्य-बल आदिके अनेक मार्ग मेरे सामने खुले दीखे । लेकिन जीवनकी जिस कार्य-शैलीको मैं संकल्प-पूर्वक कुछ दिन पहले अंगीकार कर चुका था,

उसके साथ इनमेंसे किसी मार्गका मेल नहीं बैठता था। अन्तमें कर्म-नियम, परलोक, पूर्वजन्म और परजन्मके अपनी समझ भर समझे हुए सिद्धान्तों पर मैंने इस समस्याको हल किया।

इन सिद्धान्तोंने इस दिशामें यथेष्ट काम किया और मेरी वह समस्या बहुत कुछ हल हो गई। कर्म और पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंका यदि आप सुलझा हुआ अध्ययन कर लें तो प्रेम, घृणा, सुख, दुःखकी सभी समस्याओंको एक हद तक सफलतापूर्वक हल कर सकते हैं।

पिछले कुछ वर्षोंसे मैं इन्हीं सिद्धान्तोंके आधार पर अपनी प्रायः सभी बड़ी समस्याओंको हल करता आया हूँ; लेकिन चूँकि इन सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें सस्ती और बहु-प्रचलित पुस्तकें प्रकाशित नहीं होतीं और हिन्दीने तो वैसी पुस्तकें लगभग अपरिचित-सी ही हैं, इसलिए आमलोगोंको, और सम्भव है आपको भी, उन सिद्धान्तोंको समझने और काममें लानेका अवसर कम ही मिल सकता है।

मेरा इधरका नया अनुमान है कि कर्म और पुनर्जन्मके सिद्धान्त हरेककी सभी समस्याओंको प्रायः पूर्णतया हल नहीं करते—उनके हलमें कुछ कसर शेष रह जाती है। पिछले जन्ममें रही आई ऐसी ही कुछ कसरका परिणाम हो सकता है कि मेरा मन अब भी कभी-कभी एकान्त क्षणोंमें ईरान देशके किसी अज्ञात-नाम गाँवकी ओर अपनी किसी पिछले जन्मकी प्रेयसीके लिए दौड़ जाता है। सम्भव है मेरे पिछले, या किसी पिछले जन्ममें ईरान देशमें ही मेरी कोई तीव्र प्रेम-समस्या उठी हो; सम्भव है, मेरी वह प्रेम-समस्या मेरे इधरके कुछ जन्मोंको मिलाकर उन सबकी तीव्रतम, असह्यतम और मधुरतम प्रेम-समस्या हो; और सम्भव है कि मेरी वह प्रेयसी इन दिनों भी जन्म लेकर ईरानके ही किसी गाँवमें विद्यमान हो!

इधर कुछ ही दिनोंसे, बल्कि इस लेखमालाके तीन लेख लिख चुकनेके बादसे मुझे समस्याओंके हलका एक नया पेंच सूझ पड़ा है। वह तुरन्त और भरपूर गहरा काम करने वाला है। उसकी सूझ मुझे उस बुद्धिमान मित्रसे मिली है जिसकी चर्चा मैंने तीसरे लेखमें की है। मेरा अनुमान होता है कि

समस्याओंके हलका यह पेच अत्यन्त सरल है और उसका कुछ अभ्यास हो जाने पर कर्म और पुनर्जन्मके कठिन, दुरूह-से सिद्धान्तों पर जानेकी भी आवश्यकता नहीं रह जाती।

यह नया पेंच अभी तक अच्छी तरह मेरे हाथ नहीं लगा है इसलिए उसका तथा कर्म और पुनर्जन्मके सिद्धान्तोंका भी आसरा छोड़कर मैं साधारण सुलभ दृष्टिकोणसे ही इस समस्याको देखना चाहता हूँ।

प्रेम-समस्याएँ मेरे लिए समाप्त नहीं हो गई हैं। इस प्रकारकी छोटी-मोटी समस्याएँ तो सड़कों, फुटपाथों और पगडंडियों पर चलती हुई अनेक मेरे सामने प्रतिदिन आती रहती हैं। मैं समझता हूँ कि वे प्रायः हरेकके सामने आती हैं, भले ही आमतौर पर लोग उन्हें जानबूझ कर समस्याका नाम न देते हों। ऐसी समस्याओंके सामने राह-चलते लोगोंकी गर्दनों और आँखोंको उन समस्याओंकी ओर मुड़ते और उनकी निःशब्द विचारधाराओंको टूटते हुए मैं प्रतिदिन देखता हूँ।

स्पष्ट शब्दोंमें मैं, और मेरी तरहसे दूसरे भी अधिकांश लोग प्रत्यक्ष या कल्पनामें आई हुई प्रत्येक 'प्रेम-सम्भव' मूर्तिको दुबारा देखना चाहते हैं, उससे कुछ प्रेम-सम्बन्धी लेन-देन बढ़ाना चाहते हैं या उसकी स्मृति और सम्पर्कसे बचना चाहते हैं।

इस प्रेमके सम्बन्धमें मैं पूरी स्वतंत्रता चाहता हूँ। जिससे मेरा प्रेम हो उसे अपना प्रेम जतलानेकी मैं स्वतंत्रता चाहता हूँ और यदि उसे मेरा प्रेम स्वीकार हो तो उसके अनुसार स्वच्छन्द व्यवहारकी भी स्वतन्त्रता चाहता हूँ। एक बात अवश्य है—और इस बातमें भी प्रायः सभी भले लोग मेरे साथ हैं—कि मैं किसी पर अपना प्रेम लादना नहीं चाहता। जिसे मेरा प्रेम स्वीकार न हो, जो खुले हृदयसे मुझसे प्रेम न कर सके उससे प्रेम-सम्पर्ककी मेरी भी इच्छा समाप्त हो जाती है। आजकलके सभी स्वस्थ प्रेम करने वाले प्रेमकी इस सीमाको स्वीकार करेंगे; और जो नहीं करेंगे उनकी समस्या मेरी समस्यासे भिन्न है और उसका कोई हल भी मैंने नहीं सोचा है।

लेकिन 'समाज'को मेरे वैसे प्रेम-व्यवहार बल्कि प्रारम्भिक प्रेम-विज्ञापन तकमे आपत्ति है । मेरे सामने यह एक बहुत बडी बाधा है । मैं प्रेममे पूरी स्वतन्त्रता चाहता हूँ । समाज इसमे बाधा डालता है, 'धर्म' और 'आचार-मर्यादा' इसमे बाधा डालते है । मै समाजको, धर्मको, आचार-मर्यादाको बदल डालना चाहता हूँ । प्रेम-सम्बन्धी मेरी यह व्यापक, अनेक रूपोमे बिधी हुई समस्या है । अगले, इस लेखमालाके अन्तिम लेखमे इसी पर मुझे कुछ विचार करना है ।

मैं यहाँ हूँ

मैं प्रेम चाहता हूँ, प्रेममें पूरी स्वतन्त्रता चाहता हूँ ।

जो भी सुन्दरी मेरे सामने आये, सबसे पहले मैं उसे स्वतन्त्रता-पूर्वक देखना चाहता हूँ ।

लेकिन उसी क्षण उस सुन्दर मुखके ऊपर एक घूँघट खिंच जाता है, या वह दूसरी ओरको घूम जाता है, या कमसे कम, उसकी आँखें फिर जाती है, होठोंकी मुसकान थम जाती है, उसका मधुर कंठ-स्वर रुक जाता है ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि उस परदेदारीके पहले एक चंचल, तिरछी चितवन और एक पैनी मुसकान मेरी ओर फूट निकलती है । स्वभावतया, इससे परिस्थिति सुधरनेके बदले कुछ और गम्भीर ही हो जाती है ।

पास खड़े हुए एक युवक महोदय मुझे लक्ष्य कर बोल उठते हैं; "आप यह क्या करते हैं ? यह मेरी पत्नी है ।"

एक वृद्ध-से सज्जन योग देते हैं : "खबरदार ! यह मेरी पुत्री है, यह विवाहिता और पूर्ण पतिव्रता है !"

एक तीसरे महाशय कहते हैं : "यह मेरी बहिन है । हमारा कुल ऊँचा और निष्कलंक है । आचारिक पवित्रताके सामने हम लोग अपने और दूसरोंके प्राणोंकी भी परवाह नहीं करते ।"

मैं अपने घर पहुँचता हूँ । वह सुन्दर रूप रह रहकर मेरी आँखोंके सामने झूम उठता है । मैं उसीकी बात सोचता रहता हूं ।

मैं उससे क्या चाहता हूँ ?

मैं उसे स्वतन्त्रता पूर्वक एकबार, अनेकबार, जितनी बार मैं चाहूँ, देखना चाहता हूँ । मैं उसे मुसकराता हुआ, अपनी ओर चंचल मादक चितवनसे देखता हुआ देखना चाहता हूँ । इसके आगे मैं शायद उससे कुछ बात करना चाहता हूँ; उसके बाद शायद उसके सुन्दर, सुकोमल मुखका स्पर्श करना चाहता हूँ—पहले अपनी उँगलियोंसे और फिर शायद . . . . ।

और तब अचानक मुझे याद आती है कि वह अमुककी पत्नी है, अमुक की पुत्री है, अमुककी बहिन है।

अपनी व्यथा मैं एक मित्रके सामने रखता हूँ। वह मेरी सहायता करनेका वचन देता है। दूसरे दिन पुस्तकोंका एक बंडल लाकर वह मेरे बिस्तर पर खोल देता है। उसमेंसे जो पुस्तकें निकलती हैं उनमेंसे कुछके नाम हैं—'सदाचार सोपान', 'मनको वशमें करनेके उपाय', 'नारी विष है', 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है', 'स्त्री मात्रको माँ समझो', 'कामाग्नि शामक स्तोत्र' 'वैराग्य चंडिका', 'कामिनीसे कैसे बचें', 'ब्रह्मचारी हनुमान', 'भीष्म पितामह की बिन्दु-साधना'।

मैं इन सभी पुस्तकोंको पढ़ जाता हूँ। इनसे मुझे कोई सहायता नहीं मिलती। इनसे मेरी कठिनाई दूनी, दोहरी, दोरूपी हो जाती है। अभी तक मैं उस रूपसीसे कुछ पाना ही चाहता था, अब उससे बचना भी चाहता हूँ। इस विरोधी भावनासे पहली कामनाका रूप और भी उग्र हो जाता है। मेरे विचार और भावनामें यह समस्या और अधिक जम कर टिकाऊ हो जाती है।

एक दूसरा मित्र आता है और वह मुझे एक दूसरा मार्ग बताता है। वह कहता है, "छोड़ो भी उसका ध्यान। उसका मिलना कठिन है। मैं तुम्हें एक अन्य सुन्दरीका पता बताता हूँ। वह बेहद सुन्दर है, स्वतन्त्र है और मिलनसार है।"

मैं उसके पास जाता हूँ। सचमुच वह सुन्दर, स्वतंत्र और मिलनसार है। उसके सत्कारसे मुझे बहुत सुख मिलता है। मेरी पिछली कसक प्रत्यक्षतः शान्त हो जाती है। लेकिन इससे मेरी दृष्टिमें पड़ने वाली दूसरी तरुणियोंका सुन्दर होना समाप्त नहीं हो जाता। नित नये सुन्दर रूप मेरे सामने आते हैं; उनसे भी मैं वही सब चाहता हूँ जो मैंने पहली सुन्दरीसे चाहा था। मुझे पता चलता है, मेरी तृप्ति नहीं हुई है। एक, दो, दस-बीससे नहीं, मैं हरेक सुन्दर रूपसे कुछ न कुछ चाहता हूँ। यह मेरी प्रेम-सम्बन्धी समस्या है।

यदि आप सामने या कल्पनामें आये हुए हरेक सुन्दर रूपसे 'कुछ-न-कुछ' नहीं चाहते तो आप मुझसे ऊपर हैं और मेरी यह समस्या आपकी समस्या नहीं है। यदि सामने या कल्पनामें आये हुए सुन्दर रूप आपको उनकी ओर दुबारा देखनेके लिए, आपकी चलती हुई विचारधाराको कुछ देरके लिए रोक कर उनकी बात सोचनेके लिए विवश नहीं करते तो आप प्रेम-सम्बन्धी समस्यासे परे निकल गये हैं। जो इस समस्यासे परे नहीं निकले, उनके सामने ही मैं अपनी बात रख रहा हूँ।

सामाजिक और व्यक्तिगत रूपोंमें इस समस्याके साधारणतया ये दो हल प्रस्तुत किये गये हैं: सामाजिक रूपमें—(१) स्वच्छन्द प्रेमके समर्थक एक नये स्वतंत्र समाजका निर्माण, अथवा (२) समाजके लिए नये संयमों और प्रतिबन्धोंकी व्यवस्था। व्यक्तिगत रूपमें—(१) पैसा, प्रभाव या अन्य साधनोंके बल पर स्वच्छन्द प्रेम-सम्पर्कोंकी स्थापना, अथवा (२) संयम और वैराग्यकी साधनाके लिए कठिन तपस्या आदि।

पहली श्रेणीके हलोंमें कुछ तृप्ति और सुख तो है पर उससे सामाजिक अव्यवस्था, विरोध, अशान्ति आदिकी, तथा व्यक्तिके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक 'पतन'की भी आशंका है और ये उपाय वैसे समाज और वैसे व्यक्तिके निर्माणमें बहुत कुछ बाधक भी हैं।

दूसरी श्रेणीके हलोंमें समाज और व्यक्ति सम्भवतः आदर्श समाज और आदर्श व्यक्ति बन सकते हैं, लेकिन इनके समर्थकोंके हाथ कमजोर होते जा रहे हैं और नये रक्त वालोंके हृदयोंमें इनके प्रति आन्तरिक सहानुभूति नहीं है।

मैं नहीं कह सकता, इन दो श्रेणियोंमेंसे किस श्रेणीका हल अधिक सुलभ और मान्य होगा और उसका परिणाम कब तक निकलेगा।

पुस्तकें बताती हैं कि इस प्रेम—स्त्री-पुरुषके बीच सम्बन्ध—के विषयमें महात्मा बुद्धने और महात्मा ईसाने और महात्मा गांधीने कुछ ऊँचे हल सामने रखे हैं। लेकिन उन हलोंसे आज तक मनुष्योंकी यह समस्या

समाप्त नहीं हुई; वह त्यों की ज्यों—शायद पहलेसे भी उग्र रूपमें—उनके सामने है।

कठिनतम प्रतिबन्ध और पूर्णतम स्वच्छन्दता, इन दोनोंके बीचके अनेक स्थलोंके हल समाजमें प्रयुक्त किये गये हैं; लेकिन कठिनतम प्रतिबन्ध और पूर्णतम स्वच्छन्दताका सामूहिक प्रयोग अभी तक इतिहास में नहीं किया गया। शायद इन्हींमेंसे कोई इस समस्याका वास्तविक हल हो। एक शताब्दीके लिए समाज ऐसी व्यवस्था बनाये कि जो पुरुष या स्त्री स्वपत्नी या स्वपतिसे भिन्न किसी दूसरे पर दृष्टि डाले उसे फाँसीकी सजा दी जाय; और इसका परिणाम देखकर दूसरी शताब्दीकी व्यवस्थामें खुले आम, बिना किसी प्रकारकी द्विविधाके स्वच्छन्द सम्पर्ककी छूट दे दे तो शायद इन दोनोंका वास्तविक प्रभाव जाना जा सके।

लेकिन ये दोनों छोरके उपाय असम्भव हैं। बीचके सभी उपाय अभी तक असफल रहे हैं।

मेरे एक मित्रने एक तीसरा उपाय सुझाया है—ज्ञानका, पवित्रता, आध्यात्मिकता और चरित्र-गठनकी बल-प्रयोग-रहित शिक्षाका, पवित्र सुखके आदर्शका। लेकिन मुझे यह उपाय दूसरे, प्रतिबन्धोंवाले हलका एक अंग ही जान पड़ता है। यह शारीरिक स्तरका न होकर कुछ मानसिक स्तरका प्रतिबन्ध है।

यह प्रेमकी समस्या एक ऐसी बेल है, जिसमें अपने आप फल लगते हैं। कुछ फलोंको कड़वा कहकर हम काट सकते हैं, कुछको मीठा कहकर खाने लगते हैं; लेकिन कड़वे फल फिर-फिर उग आते हैं, मीठे फलोंसे तृप्ति और स्वास्थ्यका यथेष्ट लाभ कभी नहीं हो पाता। आप इस बेलको ही काट देते हैं; यह फिर बढ़ आती है, इसकी जड़का पता नहीं चलता। यह अपने आप बढ़ती है। जन्मसे ही आप लड़के-लड़कियोंको अलग करके पवित्रतम ब्रह्मचर्याश्रमोंमें रखिये; पन्द्रह वर्षकी आयुपर पहुँचते ही उनके हृदयोंके भीतर—और लड़कियोंके हृदयोंके ऊपर भी—कोई चीज़ उभर आती है और उन्हें दूसरे मार्ग पर खींच चलती है। आप जानते हैं,

वह चीज़ क्या है ? वह शिक्षा और अशिक्षा, धर्म और अधर्म दोनोंके बिना किसी अज्ञात दिशासे उनके पास अपने समय पर आ जाती है। उस चीज़को सम्भवतः आप नष्ट कर सकते हैं, क्योंकि वही संसारके 'पतनों'की जड़ है। लेकिन यदि आप उसे नष्ट कर देते हैं तो उन लड़कों-लड़कियोंके जीवनको भी नष्ट कर देते हैं—उनमें गतिशील जीवनके कोई लक्षण शेष नहीं रह जाते।

मैं प्रत्येक सुन्दर रूपके साथ प्रेम-सम्पर्क स्थापित करना चाहता हूँ। लेकिन समाज इसमें बाधा डालता है, मेरे सामने कुछ विपत्तियाँ उपस्थित करता है। तब मैं इस प्रेम-सम्पर्कसे एकदम हटकर 'महात्मा' बन जाना चाहता हूँ। इसमें मुझे कठिन आन्तरिक संघर्षका सामना करना पड़ता है।

विवश होकर मुझे झूठ और आडम्बरका सहारा लेना पड़ता है। मैं समाजमें मिलता हूँ। सभी सुन्दर रूपोंकी ओर मेरी आकृष्ट-मुग्ध-सी दृष्टि घूमती है; लेकिन मैं मानो उनके पतियों, पिताओं और भाइयोंसे कह देता हूँ: "नहीं नहीं, मैं उस रूपकी ओर आकृष्ट नहीं हूँ।" पतियों, पिताओं और भाइयोंको मेरी दृष्टिका कुछ-कुछ अनुमान होता है, पर वे भी कह देते हैं: "हाँ हाँ, आप उसकी ओर उस तरह आकृष्ट नहीं हैं; आइये, आप यहाँ बैठ सकते हैं।"

अपना यह झूठ और आडम्बर, यह पाखंड मैं द्वार-द्वार और सड़क-सड़क पर लिये हुए चलता हूँ। मैं किसीसे सच बात नहीं कहता, नहीं कह सकता। कमसे कम इस एक झूठ और आडम्बरसे मेरी स्वतंत्रता और ईमानदारीकी प्रवृत्तिका दम घुटता है। मैं दूसरे मामलोंमें भी सहज ही झूठ और आडम्बरका व्यवहार बनाये रखता हूँ। मैं ईमानदारी में उठ नहीं पाता। मैं किसीके लिए सच्चा नहीं हो पाता।

आप बहुत अमीर हैं और अस्तेय व्रतका—चोरी न करनेकी प्रतिज्ञा का—पालन करना चाहते हैं। लेकिन यदि आपको अपने पड़ोसीके घरसे प्रतिदिन केवल एक पैसा उसके मालिककी नजर बचाकर लेना पड़ता है

तो क्या आप अस्तेय व्रतका पालन कर सकते हैं ? कभी नहीं ! आप उतने ही ठीक चोर हैं जितना संसारमें कोई भी दूसरा है ।

इस समस्याका एक हल मेरे सामने है । मैंने उसे पूरा आजमाया नहीं है, लेकिन मेरा अनुमान है कि वह मेरा काम दे जायगा ।

जब मुझे कोई सुन्दर रूप दीख पड़ता है तो मैं स्वागत-सत्कार भरी एक दृष्टिसे अच्छी तरह देखकर उसे—और उसके पति, पिता और भाई भी पास हों तो उन्हें भी—बताना चाहता हूँ कि वह मेरी दृष्टिमें बहुत सुन्दर और आकर्षक है ।

जहाँ मैं सुविधापूर्वक ऐसा कर पाता हूँ, तुरंत ही सौन्दर्य, सत्कार, सहृदयता और सचाईकी कुछ सुलझी हुई भावनाएँ मेरे मनमें उठ आती हैं और मेरी वैसी प्रेम-सम्बन्धी समस्या अदृश्य हो जाती है । उस रूपका कोई वैसा अपहरणकारी प्रभाव मेरे ऊपर नहीं रह जाता । वह सुन्दर रूप रूप से भिन्न और भी कुछ मेरे लिए हो जाता है । अपने सम्बन्धमें यह मेरी हरबारकी—यद्यपि अभी कुछ ही बारकी—परखी हुई बात है ।

और जहाँ मैं ऐसा नहीं कर पाता वहाँ उसपर और उसके पति, पिता, भाई आदि पर मुझे एक तरहका तरस आ जाता है और तरस आते ही मेरा ध्यान उस ओरसे हट जाता है । किसी पर तरस करना अन्याय और उसका निरादर है; लेकिन उस समस्याका दूसरा, मजबूरीका हल मुझे यही जान पड़ता है ।

मैं नहीं कह सकता, मेरे ये प्रयत्न आपके—बल्कि मेरे भी—लिए कहाँ तक उपयोगी होंगे; सारे समाजके लिए तो इनकी उपयोगितामें मुझे काफ़ी अधिक संदेह होना चाहिये । लेकिन आप चाहें तो सुभीतेकी जगह व्यक्तिगत रूपमें इनका परीक्षण करके देख सकते हैं ।

समाजमें सुन्दर रूपोंकी रचना कहाँसे हो जाती है ? क्यों हो जाती है ?

औसत दर्जेके साधारण सुन्दर शरीरोंसे भी तो मनुष्योंका काम चल सकता था । रूपमें—विपरीत सेक्सके रूपमें—आकर्षण क्यों है ? क्या

इसका कोई विशेष अभिप्राय, इससे कोई विशेष सुख मनुष्य जातिके लिए अभीष्ट नहीं है ?

बुद्धिमत्ताके एक सिद्ध, समाजसे दूर बसने वाले आचार्यने कहा है :

"सेक्स (काम अथवा स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध) की विस्तृत समस्याके नीचे दबी हुई सचाइयोंको जब संसार खोज निकालेगा और सचमुच उनकी कदर समझेगा तब.....उसे जो प्रकाश मिलेगा वह ऐसा होगा 'जैसा प्रकाश समुद्र या पृथ्वी पर अब तक कभी नहीं चमका'.....वह प्रकाश मनुष्यको सच्चे आत्मिक बोध तक ले जायगा ।"

पैसा और प्रभावकी अपनी समस्याओंका ठीक हल मेरे हाथ लग गया है और प्रेमकी समस्याओंका भी हल मिला दीखता है । मैं उनके प्रयोग कर रहा हूँ । मेरे ये प्रयोग क्या आपके भी किसी उपयोगमें आ सकेंगे ?

मैं यहाँ हूँ । आप कहाँ हैं, मेरे कितने समीप, मुझसे कितनी दूर, मैं नहीं जानता । आपकी समस्याओंको मैं नहीं जानता । आपके लिए कुछ भी सीख-सलाहकी बात मैंने नहीं कही है; मैं कभी नहीं कह सकता हूँ ।

फिर भी मेरे ये प्रयोग आपके भी किसी उपयोगमें आ सकेंगे तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा ।

[द्वितीय खण्ड]

सबसे बड़ी माँग

किसी समय दो नदियोंके बीच बसा हुआ एक शहर था।

एक बार ऐसा हुआ कि दोनो नदियोंमें जोरोंकी बाढ़ आई और सारे शहरके डूबनेकी नौबत आ गई।

पहले तो लोगोंसे जहाँ तक बन पड़ा, उन्होंने बचने-बचानेका प्रयत्न किया; लेकिन जब उन जान-मालकी प्यासी नदियोंका पानी उनकी ऊँची कगारों पर चढ़ आया और उनकी छातियोंका उभार उन कगारोंके काबू से बाहर होने लगा तो लोगोंके हाथ-पैर फूलने लगे और उन सबने बीच शहरके बड़े भागमें इकट्ठे होकर देवताओंसे प्रार्थना की।

देवता लोग वैसे तो बहुत रहमदिल होते हैं और प्रार्थना करने वालोंकी माँगें पूरी करनेमें उन्हें प्रसन्नता भी होती है, लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि लोगोंकी प्रार्थनाएँ देवताओंके सोचे हुए इरादों और कामोंके विरुद्ध पड़ जाती हैं और तब वे पत्थरसा दिल करके उनकी प्रार्थनाओंको किसी-न-किसी बहाने टाल भी जाते हैं।

लोगोंने देवताओंसे प्रार्थना की, लेकिन देवताओंका मतलब इस बाढ़ से कुछ और ही था। इसलिए उन्होंने लोगोंको जवाब दिया—

"इस विपत्तिसे बचनेका उपाय यह है कि आप सब लोग अपने घरों को लौट जाएँ और आपमेंसे जितने जवान और नौजवान लोग हों वे सब जी खोलकर सच्चे दिलसे अपनी पत्नियोंसे, और जिनकी अभी पत्नियाँ न हों वे अपनी प्रेयसियोंसे प्यार करें। बाकीका प्रबन्ध हम कर लेंगे।"

उस मुसीबत और पास आई मौतके समयमें प्रेयसियों और पत्नियों को प्यार करना बहुत कठिन काम था और शहरके बड़े-बूढ़ों और बूढ़ोंकी दृष्टिमें बहुत बुरा और स्वार्थपूर्ण भी था। असलियत तो यह थी कि जबसे लोगोंको अपनी जान खतरेमें दीखने लगी थी तबसे जवानों और नौजवानों

ने अपनी पत्नियों और प्रेयसियोंको प्यार करना छोड़ दिया था और शहरके जान-मालके बचाव की दौड़-धूपमें लग गये थे ।

देवताओंकी इस न पूरी होनेवाली चालाकीकी शर्त पर लोग बड़बड़ाते हुए सभासे उठ आये ।

लेकिन उस शहरमें एक खूबसूरत नौजवान था, जो अपनी प्रेयसीके प्रेममें बराबर शराबोर था और इस बाढ़की मुसीबतसे उसके प्रेमव्यवहार में कोई कमी या अन्तर नहीं आया था । उसकी इस मस्ती और शहरकी तरफ़से लापरवाही पर लोगोंने उसकी बहुत लानत-मलामत भी की थी ; मगर वह अपनी प्रेयसीका पुजारी टस-से-मस न हुआ था ।

और जब इन दोनों प्रेमियोंने देखा कि अब शहर के डूबने में अधिक देर नहीं है तो उन्होंने निश्चय किया कि वे दोनों अपने सदा-मीठे प्रेमकी कुछ बख़्शीश अपने शहरके लोगोंको भी देगें और प्रेमका कुछ चमत्कार उन्हें दिखायेंगे ।

वे दोनों रातों-रात शहरके उस कोने पर चुपचाप जा पहुँचे जहाँ दोनों नदियोंके बीचका फ़ासला सबसे अधिक था और जहाँसे शहरके किनारे-किनारे आगे बहकर दोनों नदियाँ संगम पर, यानी शहरके दूसरे छोरपर मिल जाती थीं ।

उस नौजवानकी प्रेयसीने नदीके किनारे काठके एक बड़े तख़्ते पर बैठकर एक बड़ी मशाल अपने हाथों में ले ली और उस नौजवान ने रस्सियोंसे अपनी प्रेयसीको और उस मशालको जकड़कर उस तख़्तेमें बाँध दिया और उसे नदीमें तैराकर एक रस्सीके सहारे नदी किनारेके एक पेड़से उस तख़्ते को अटका दिया ।

नौजवानने उस खूबसूरत लड़कीको एक बार और प्यार किया और उस प्यारकी मस्तीमें डूबा हुआ शहरको लौट आया । उस समय उसका प्यार शायद सबसे ज़्यादा उमड़ आया था ।

बस्तीमें आकर उसने लोगोंको खबर दी कि आज सबेरे अँधेरा रहतेही एक बड़ा जहाज़ बस्ती वालोंको यहाँसे निकाल लेजानेके लिए आ रहा है ।

शहरके सब लोग उस सुबह अँधेरा रहे ही, नदीके किनारे उस बड़े जहाजके इन्तजारमें इकट्ठा हो गये।

उधर उस खूबसूरत लड़कीने कुछ रात और अँधेरा रहे, निश्चित समय पर पेड़से तख्तेको अटकाये रहने वाली रस्सीको काट दिया और उस बड़ी मशालको जला दिया।

वह तख्ता तेजीसे पानीमें बह चला।

बीच शहरके नदी-किनारे पर इकट्ठे हुए लोगोंने, देखा बीच धारमें बहती हुई एक रोशनी जा रही है। उस नौजवानने आवाज लगाई: "वही है जहाज" और नदीमें कूद पड़ा।

जान बचानेके लालच और बेकलीमें शहरके सभी लोग उसके पीछे नदीमें कूद पड़े, कि कुछ दूर तैरकर ही उस जहाज तक पहुँच जायें।

लेकिन लकड़ीका वह तख्ता, जिसे लोगोंने जहाज समझा था, पानीकी लहरोंमें उलट-पुलटकर डूबता-उतराता आगे बह रहा था और उसकी मशाल बुझ चुकी थी और वह खूबसूरत लड़की भी न जाने कबकी मर चुकी थी।

फिर भी, इस बेतहाशा तैराकीकी दौड़में मिलकर शहरके करीब पचास प्रतिशत लोग नदीके पार जा पहुँचे, क्योंकि वे सभी लोग आमतौरपर अच्छे तैराक थे।

शहरकी आधी आबादीकी जानका बचाव उन दो खूबसूरत नौजवानों के आपसी प्रेमकी उन शहर वालोंके लिए बख्शीश थी; और सचमुच वह एक काफ़ी बड़ा चमत्कार भी था।

इसके बिना उन लोगोंकी कभी इस तरह नदीको पार करनेकी हिम्मत न पड़ती। यह सब उस शहरमें प्रेमियोंके सिर्फ़ एक जोड़ेकी मौजूदगी की ही करामात थी!

इस कथाको मैं आजसे कई बरस पहले एक कहानीके रूपमें, जरा दूसरी तरहसे, विस्तारके साथ लिख चुका हूँ और वह मेरे किसी कहानी संग्रहमें मौजूद है।

और इन दिनों मुझे मालूम हुआ है कि हर मुसीबत और हर समस्याका हल प्यारमें ही है; और वही लोगोंकी हर समय, हर मौक़ेकी सबसे बड़ी ज़रूरत है।

उस शहरके लोगोंकी तरह, मुमकिन है आप भी अभी इस बातको असम्भव और बेकार और बकवास समझें; लेकिन अगर आप ऐसा समझेंगे तो इसकी वजह यही होगी कि आप अभी प्यार करनेमें कुछ डरते-झिझकते हैं।

लेकिन जिन दिनों कोई मुसीबत और उलझन न हो उन दिनों प्यार और प्रेम करना एक बहुत ही मीठे अनुभवकी चीज़ है, इसे करीब-करीब सभी लोग मान लेंगे।

अपने-अपने 'जन्म' के अनुसार किसी सुन्दर स्त्री या सुन्दर पुरुषको प्यार करना ज़िन्दगीका एक बड़ा ही मीठा, रस-भरा अनुभव है, इसे सभी समझदार लोग थोड़ा-बहुत स्वीकार करेंगे, वे चाहे पढ़े-लिखे हों चाहे अनपढ़ हों। जवान खूबसूरतीका आकर्षण एक ऐसा ही कुछ, न टाला जा सकने वाला 'थ्रिल' होता है!

आप भी मनसे मेरी इस बातका करीब-करीब समर्थन करेंगे ही!

और मैं समझता हूँ कि इस तरहका प्यार करना, अगर उसमें कोई ख़ास उलझनकी बात न पड़ती हो; बुद्धिमानीका भी काम है।

लेकिन दुनियामें ऐसे बेवकूफ़ोंकी कमी नहीं है जो इस तरहका प्यार न करते हैं, न कर सकते हैं और न इसकी क़दर जानते हैं।

सुन्दर-से-सुन्दर युवती या सुन्दर-से-सुन्दर युवक आप उनके सामने खड़ा कर दीजिए, उनका मन उसकी तरफ़ नहीं जाएगा।

मोटे तौरपर पन्द्रह सालसे नीचेके सभी आदमी और सभी औरतें इसी तरहके बेवकूफ़ होते हैं, और उनकी तादाद दुनियाकी आबादीकी एक चौथाई तो कही ही जा सकती है।

"लेकिन दुनियाकी उस एक चौथाई आबादीको आप बेवकूफ़ नहीं कह सकते। वे सिर्फ़ अभी बच्चे हैं। जवानीकी उम्र आनेपर ज़रूर उनके

दिलोंमें रूप और यौवनकी ओर आकृष्ट होने का रुझान पैदा होगा—वह तो एक कुदरती बात है।" मेरे एक मित्रकी राय है।

"वे बवकूफ़ नहीं, बहुत अच्छे और शुद्ध हृदयके हैं कि वासनाके पाप और उसकी पीड़ाओं-परेशानिओंसे बचे हुए हैं। अगर यह वासना लोगोंके दिलोंमें पैदा ही न हो तो संसार कितना पवित्र बन जाय !" एक दूसरे अधेड़ अवस्थाके सज्जन कह रहे हैं।

दुनियाकी उस एक चौथाई आबादीके बारेमें मैं अपने उस, कुछ अनुचितसे, शब्दको वापस लेता हूँ। मैं अपने पहले कहे मित्र की रायसे सहमत हूँ, यद्यपि दूसरे अधेड़ अवस्थाके सज्जनकी बात मुझे कुछ अधिक नहीं जँची है।

और दुनियाकी बाक़ी तीन चौथाई आबादीके बारेमें भी मैं अपने इस शब्दको वापस लेता हूँ—छिपाऊँ क्यों, मैं उनके बारेमें भी इस शब्दका प्रयोग करने जा रहा था।

दुनियाके बाक़ी तीन चौथाई आबादी—यानी १६ से २० और २१ से ४५ और ४६ से ६० या उससे कुछ ऊपर उम्रके लोग भी किसी-किसी मौक़ेपर जवानी और ख़ूबसूरतीकी तरफ़से आँखें फेरकर प्यार करने और प्यार निभानेके अयोग्य हो जाते हैं। ऐसे मौक़ेकी एक मिसाल ऊपरकी बाढ़वाली चर्चामें दे ही चुका हूँ। और बीमारी, तंगहाली, कमजोरी, निरादर, परेशानी या किसी चीजके लिए दौड़-धूपकी उलझनोंके समय ऐसे मौक़े लोगोंके सामने बने ही रहते हैं और वे अपने ज्यादातर वक़्तमें प्यार करने और निभानेके नाक़ाबिल रहते हैं।

लेकिन ठीक भरी जवानी और ठीक जुटी जोड़ीके आपसी प्यारमें ये बाधाएँ कुछ भी अड़चन नहीं डाल पातीं।

और जिनके आपसी प्यारमें ये बाधाएँ अड़चन डाल सकतीं हैं उनके बारेमें एक नई बात अभी-अभी मेरे मित्रने सुझाई है—उनकी अड़चनका कारण यही है कि वे अभी सिर्फ़ बच्चे ही हैं।

पन्द्रह सालके नीचेके ही नहीं, इससे ऊपरके भी, किसी भी उम्रके लोग भरी जवानीके दृष्टिकोणसे सिर्फ़ बच्चे ही हो सकते हैं, ऐसी मिस्टर बी. की राय है।

मिस्टर बी. का कहना है कि जो लोग अविचलित रूप में, यानी जमकर किसीको प्यार नहीं कर सकते और जवानी और ख़ूबसूरतीका आकर्षण जिनके लिए ढीला हो-हो जाता है, वे बचपनकी अर्थमेटिक (अंकगणित) से चाहे कितनी ही उम्रके हों, जवानीकी अर्थमेटिकसे बच्चे ही हैं, और जिस तरह बचपनके बाद एक उम्र ऐसी ज़रूर आती है जिसमें वे अपने आप किसीको भरपूर प्यार करना सीख जाते हैं, उसी तरह उन सबको ज़िन्दगियों (?) में एक वक़्त ज़रूर ऐसा आएगा जब वे भरपूर और जमकर प्यार करना सीख जाएँगे।

बचपनकी अर्थमेटिक वह अर्थमेटिक है, जिससे कोई भी आठ सालसे ऊपरकी उम्रका बच्चा किसीकी उम्र बता सकता है। ऐसे बच्चे को आप किसीके भी पैदा होनेका साल बता दीजिए और वह मौजूदा सालकी संख्यामें से उस सालकी संख्याको घटाकर उसकी उम्र बता देगा। यह लोगोंकी उम्र निकालनेके लिए बचपनकी अर्थमेटिक है।

और उम्र निकालनेके लिए जवानीकी अर्थमेटिक क्या चीज़ है, यह मैं नहीं बता सकता; लेकिन मि. बी. का कहना है कि वह उम्र दहाइयोंमें नहीं बल्कि लाखों-करोड़ोंकी संख्यामें निकलती है और उसका अन्दाज़ आदमीके स्वभाव और समझको देखकर भी किया जा सकता है।

उनका कहना है कि बचपन और बुढ़ापा मनुष्यकी अस्थायी और गुज़रती हुई अवस्थाएँ हैं और जवानी ही उसकी असली स्थायी अवस्था है।

यह बात कुछ अजीब-सी मालूम पड़ती है। है न ? फिर भी इसपर कुछ विचार किया जा सकता है। लेकिन इस जगह ऐसा करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।

अगर मि. बी. के कहनेके अनुसार जवानी ही मनुष्यकी असली अवस्था है (जिस तक लोग अभी स्थायी रूपमें नहीं पहुँच पाये हैं) तो निस्संदेह

'प्रेम करना, सुन्दरता और जवानीकी ओर आकृष्ट होना मनुष्यका असली, स्थायी स्वभाव और उसकी स्थायी आवश्यकता साबित की जा सकती है।

मिस्टर बी. की रायमें चूँकि मेरा विश्वास है, इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि मेरी, आपकी और हर एककी स्थायी अवस्था अगर जवानी ही हो और हम सबकी सबसे बड़ी जरूरत 'प्यार करना' ही हो तो यह कोई अनहोनी बात नहीं है।
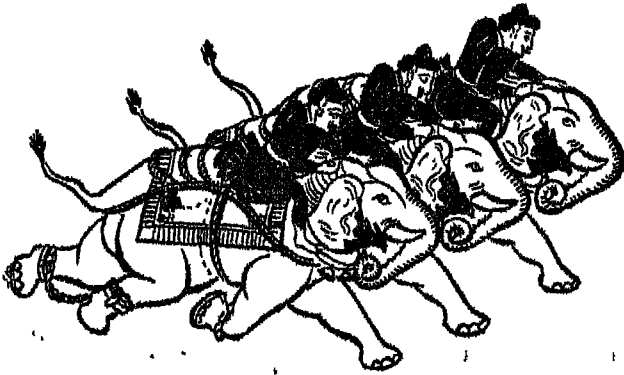
बचपन कितना—बुढ़ापा कितना

इस लेखमें आपके साथ मैं पिछले लेखकी और मिस्टर वी. की रायों की छान-बीन करनेके लिए तैयार हूँ।

उस लेखकी बातें साफ़ नहीं हैं और मिस्टर वी. की राये भी कुछ अजीब-सी मालूम होती हैं।

तो फिर आइए, उनकी जरा खोज-पड़ताल करें।

मैं नहीं कह सकता कि अगर किसी युवक और युवतीमें प्रेम हो जाए तो उसके बारेमें आपकी क्या राय होगी। लेकिन इतना आप जरूर कहेंगे कि ऐसा दुनियामें अक्सर हो जाता है और जवानीकी उम्रमें लोगोंका ऐसा ही कुछ रुझान रहता है।

इस सम्बन्धमें मैंने अपने कुछ मित्रोंकी रायें इकट्ठी की हैं। उनका ब्योरा इस प्रकार है:—

१—अगर किसी युवक और युवतीमें प्रेम हो जाए तो यह बिलकुल स्वाभाविक बात है, लेकिन ऐसे मामलेमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि उनमें कोई अनुचित व्यवहार न होने पाए।

२—यह बात अनुचित है; और समाजमें ऐसा न होने पाए, इसका प्रबन्ध समाजको रखना चाहिए। ऐसा प्रेम केवल पति-पत्नीमें होना चाहिए और दूसरे स्त्री-पुरुषोंमें किसी तरहका प्रेम होना खतरेसे खाली नहीं है।

३—यह जवानीका चार दिनमें उतर जानेवाला नशा है। जब आदमी अपनी जिन्दगीकी असली कशमकशमें आता है और पेटकी आग बुझानेकी मुश्किलें जब उसके सामने आती हैं तब ये सब बातें उसके सामने नहीं टिक सकतीं।

४—यह तो भाईसाहब, वह रोग है कि जिसकी जानको लगा उसकी जानके साथ ही जाता है—ईश्वर इससे बचाये।

५—ज़िन्दगीका असली मज़ा कहीं है तो इसीमें। इसके बिना ज़िन्दगी जानवरकी ज़िन्दगी है।

६—यह तो जनाब, अगर निभ जाए तो उस 'मंदिर' का पहला ज़ीना है जिसे 'इश्के हकीकी' या भगवान्‌की 'भगती' कहते हैं।

७—इसमें चार दिनकी मस्ती-बे-ख़ुदी तो है मगर आख़िरमें नतीजा कुछ नहीं।

८—जिसके दिलमें यह चीज़ हो और साथ ही एक बहादुर सिपाहीकी तरह ज़िन्दगीके मैदाने-जंगमें मिलकर काम करनेका कुछ आदर्श भी सामने हो, उसीकी ज़िन्दगीमें सोने और सुहागाका मेल समझिए।

९—जहाँ यह बात हो, समझ लीजिए कुछ पुराने जन्मका उन दोनोंका संस्कार है।

१०—सबसे अच्छी चीज़ तो वह प्रेम है जो मनुष्य मात्रके लिए हो, लेकिन ऐसा प्रेम भी उसी अच्छे प्रेमका एक प्रारम्भिक पाठ है।

११—अगर ये दोनों सच्चे गहरे प्रेमी निकलें तो उनका प्रेम निःस्वार्थ होगा और वे दोनों बहुत ऊँची गतिको प्राप्त होंगे।

१२—ऐसा प्रेम ही समाजका कोढ़ है; यही समाजको निकम्मा बनाता है।

१३—स्वार्थका सबसे अधिक निखरा हुआ—घोर स्वार्थपूर्ण—रूप यही है।

१४—अगर दोनोंका सामाजिक दर्जा बराबर हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।

१५—सुना है, गुजरातियोंमें यह बात आसानीसे हो सकती है। 'सोशल लाइफ़' तो भाई इन्हीं लोगोंकी है।

१६—वे दोनों ग़रीब हों तो बहुत बुरी बात है, अमीर हों तो बहुत अच्छी बात है।

१७—मुझे पूरी बात लिखिए—यह किसका किस्सा है ?

१८—आपको ऐसी ही बातें सूझती रहती हैं। कोई कुछ करे, आपको मतलब ?

१९—प्रिय मित्र ! आपका प्रश्न मिला। इसके सम्बन्धमें मैं आपसे मिलनेके लिए उत्सुक हूँ। कल दोपहर अपने घरपर ही मिलियेगा।

२०—जब तक उन दोनोंके संबंधमें पूरी परिस्थितिका मुझे पता न हो, मैं कोई राय नहीं दे सकता। यह अच्छी बात भी हो सकती है और बुरी भी ; गंभीर भी हो सकती है और छिछोरेपनकी भी।

२१—उन्हें चाहिए कि जबतक मुमकिन हो, आपसमें जिन्दगीके मजे लूटें और जब बीचमें कोई मुसीबत आती देखें, तब अलग होकर अपने-अपने घरोंमें आराम करें।

२२—ऐसे मामलोंमें भला इस तरह क्या राय दी जा सकती है ? ये बहुत नाजुक मामले हैं; फिर भी यह अनुमान किया जाता है कि अगर वे दोनों प्रेमी कुछ समझदार और अच्छे स्वभावके हैं और उनमें समाज के सामने आँखें उठाकर देखनेका दम भी है तो उनका प्रेम उनकी जिन्दादिली और जीवनमें प्रगतिका ही सूचक है।

ये मेरे तीन सौ में बाईस मित्रोंके उत्तर हैं ; बाक़ी २७८ मित्रोंके उत्तर इन्हीं २२ में से किसी-न-किसीसे मिलते जुलते हैं।

इस प्रश्नके सम्बन्धमें आपकी क्या राय होगी, यह जानना इन पंक्तियोंको लिखते समय मेरे लिए कठिन है ; फिर भी मेरा अनुमान है कि आपकी राय इन बाईसोंसे एकदम अलग न होगी।

और अगर आपकी राय एकदम निराली ही हो, तो इन पंक्तियों पर नजर पड़ते ही एक पत्रमें उसे मेरे नाम लिख भेजने की कृपा करें।

मेरे इन राय देनेवाले मित्रोंकी रायें इतनी विपरीत दिशाओं तक फैली हुई हैं कि मैं इनसे कोई निश्चित नतीजा नहीं निकाल सकता हूँ। लेकिन एक बातमें मेरे ये सब मित्र सहमत हैं, कि ऐसा हो जाना एक स्वाभाविक

बात है—भले ही यह मनुष्यके मनमें भरी हुई किसी अच्छाईकी वजहसे हो या बुराईकी वजहसे।

तो फिर इस प्रश्नके इस पहलू पर विचार किया जा सकता है कि यह बात मनुष्यके लिए स्वाभाविक क्यों है?

इस सम्बन्धमें मिस्टर बी. की राय है (और ऊपर की २२ रायों में से २२ वीं उन्हीं की राय है)—मैं मिस्टर बी. की राय यहाँ इसलिए दे रहा हूँ कि मेरे किसी दूसरे मित्रने इस बारेमें इतनी खुली हुई, मनोरंजक और विस्तार पूर्ण राय नहीं दी है—कि दो व्यक्तियोंके बीच इस तरहका प्रेम स्वाभाविक इसलिए है कि वे पिछले कई जन्मोंमें इस तरह का, या इससे मिलता-जुलता प्रेम किसी-न-किसीके साथ कर चुके हैं और प्रेम करनेकी उनको आदत पड़ गई है। उनका आपा संसारमें बार-बार जन्म लेते-लेते अब अपनी युवावस्थामें प्रवेश करने योग्य हो आया है, ठीक उसी तरह जैसे कुछ बार—कह लीजिए, १५-१६ बार—वसंत की ऋतु पार करने पर बच्चा युवावस्थामें पैर रखनेके करीब आ जाता है। बच्चेकी युवावस्था की भावनाओंको जगानेके लिए किसी प्रयत्न या शिक्षाकी आवश्यकता नहीं होती; समय या उम्र ही उसके लिए सबसे बड़ा प्रयत्न या सबसे बड़ा शिक्षक है। दूसरी बात यह है कि इस प्रेम करनेके अभ्यासमें ही ऐसे मनुष्यका अधिकांश समय बीतता है; बचपन और बुढ़ापा तो उसकी अस्थायी—गुज़रती हुई—अवस्थाएँ हैं।

क्या यह बात आपको कुछ विचित्र सी मालूम पड़ती है?

लेकिन अगर उसके पहले पन्द्रह साल बचपनके माने जायँ और आखिरी पन्द्रह बुढ़ापेके और बीचके क़रीब तीस जवानीके, तो इसमें आपको कोई खास आपत्ति न होगी।

और बुढ़ापेके पन्द्रह बरसोंमें भी जवानीका कुछ-न-कुछ रंग आदमी पर रहा आता है (भले ही उसके शरीरकी कमजोरियाँ उसे ढके रक्खें) —यह बात आपको नामंजूर नहीं हो सकती।

इस तरह आदमीकी स्थायी अवस्था जवानीको ही कहा जा सकताहै।

और जवानीका यह धावा, सुना है, अब बचपनकी उम्र पर भी हो गया है।

बड़े-बड़े मनोबैज्ञानिकोंकी खोज है कि बच्चेमें जन्मसे ही जवानीका जोश, एक खास शकलमें—जिसे वे 'सेक्स-इम्पल्स' कहते हैं—मौजूद होता है और बच्चेका बहुत कुछ खेल-कूद और मेल-जोल इस 'सेक्स-इम्पल्स,, से प्रेरित होकर ही होता है।

ऐसी दशामें तो यही कहना चाहिए कि आदमीकी उम्र जवानी की ही अमलदारीमें कटती है।

लेकिन मिस्टर पी. तो उसे और ही हिसाबसे जवान बताते हैं।

उनका कहना है कि आदमी मरनेके बाद दूसरे लोकोंमें जितने दिन रहता है, जवान ही रहता है; क्योंकि मरनेके पहले बुढ़ापा और कुछ नहीं, सिर्फ़ शरीरकी कमज़ोरी ही है और शरीरके छूट जानेपर यह कमज़ोरी भी ूट जाती है।

अगर यह बात ठीक है तो जवानी एकदम स्थायी साबित हो जाती है।

बचपन और बुढ़ापा आदमीकी गुज़रती हुई दशाएं हैं और असलियत में वह जवान है; और किसी-न-किसीको प्यार करना जवानीका स्वभाव है, उसका पेशा है—बल्कि उसके चलनेका रास्ता है।

उन दो नौजवान प्रेमियोंके संबंधमें आपकी पहले जो कुछ राय रही हो, क्या अब उसमें आप कुछ हेर-फेर करनेकी आवश्यकता समझते हैं?

अगर यह बात अभी आपको पसन्द न आ रही हो तो ज़रा सब्र करें, इस मामलेको मुझे अभी ज़रा और आगे बढ़ाकर देखना है कि कहाँ पर यह आपके लिए रुचिकर हो सकता है।

●

चौथा प्यार

"बचपन और बुढ़ापा मनुष्यकी उड़ती हुई, अस्थायी अवस्थाएँ हैं और उसकी स्थायी, वास्तविक अवस्था जवानी ही है, और प्रेम करना ही उसका स्वभाव, पेशा, बल्कि एक मात्र काम है—यह एक ऐसा वाद या 'थ्योरी' है, जिसपर विश्वास करने वालोंमें निकम्मोंकी संख्या अधिक और कर्मशील पुरुषोंकी कम निकलेगी," यह मिस्टर रायज़ादाकी राय है।

मेरा अनुमान है कि अधिकतर पढ़े-लिखे और दुनियामें कुछ ठोस काम करनेवाले लोगोंकी भी यही राय होगी।

और इस वादका विरोध करनेवाली जीती-जागती मिसालोंकी भी दुनियामें कमी नहीं है।

मिस्टर जोशी अगर इस प्रेमके पेशेमें न पड़े होते तो आज दिन तक इस योग्य अवश्य हो गये होते कि अपनी पत्नीके लिए उसकी मन-पसंद साड़ी और अपने लिए हर साल कम-से-कम एक ठंडा सूट खरीद सकते। अगर उनका मन किसीके प्रेममें दिन-रातके अठारह घण्टे अनमना न रहता होता तो वे जरूर अपने दफ़्तरमें मन लगा कर छह घण्टे काम कर सकते और उनकी तनख़्वाह भी सत्तर रुपयेसे ज्यादा होती। मिस्टर एम. अगर मिस एल. के प्रेममें न पड़े होते तो वे घर-बार छोड़कर चिथड़े लपेटे बस्तियोंकी धूल न छानते, न जेल जाते, न उनका दिमाग़ ही खराब होता। मिस्टर ए. ने अगर मिसेज एस. के साथ प्रेम-व्यापारमें साझा न किया होता तो आज वे दुनियाके एक सुपरिचित सिंहासन पर बैठकर राज्य करते होते।

आप जानते हैं, ये मिस्टर ए. और मिसेज एस. कौन हैं? एक बार मेरे कमरेमें बैठे हुए पाँच मित्रोंमें से चारने मेरे मुँहसे इन दोनों अधूरे नामोंको सुनकर पूरे नाम बता दिये थे।

तो फिर इस प्रेमके सिलसिलेमें ऐसे ही नतीजे आमतौर पर दुनिया के सामने हैं और इस चीज़के बारेमें लोगोंकी राय ज़्यादा अच्छी नहीं है।

लेकिन इन सब बातोंके होते हुए भी मिस्टर वी. की राय इस प्रेमके बहुत ही पक्षमें है और इस लेखके पहले वाक्यमें जिस 'वाद' की मैंने चर्चा की है उसमें उनका पूरा विश्वास है।

और सच तो यह है कि उस वादमें मेरा भी विश्वास हो चला है।

आप इससे कहीं यह न समझें कि मैं मिस्टर वी. का कोई पिछलगा या भक्त या कर्ज़दार हूँ। मिस्टर वी. के प्रति मित्रतापूर्ण सम्मानके साथ यहाँ यह बता देनेमें कोई हर्ज नहीं है कि मेरे बाबाने किसी ज़मानेमें मिस्टर वी. के बाबा और पिताजीकी जो परवरिश की थी, उसीकी बदौलत मिस्टर वी. की भी आजकी हैसियत बनी है।

इस प्रेमके विषयमें मिस्टर वी. के साथ मैंने लगातार छह महीने तक रोज़ाना छह-छह घण्टे तक बहस की है और इस बहसमें हम दोनोंने अक्सर छोटी और बड़ी, नई और पुरानी किताबोंके भी हवाले दिये हैं।

इस विषयमें मिस्टर वी. की जिन बातोंसे मैं सहमत हूँ, उनमें से कुछ ये हैं।

१—भोजन, कपड़ा, मकान और सोसायटी यानी दूसरे लोगोंका सङ्ग-साथ—ये चार मनुष्योंकी ख़ास ज़रूरतोंमें मुख्य हैं।

२—आमतौर पर आदमी बिना भोजनके जीवित नहीं रह सकता, बिना कपड़ेके स्वस्थ और आरामसे नहीं रह सकता, बिना मकानके सुरक्षित नहीं रह सकता और बिना दूसरेके सङ्ग-साथके शिक्षित तथा मानसिक सुखोंको समझने और भोगनेके योग्य नहीं हो सकता।

३—इन चार ज़रूरतोंमें से पहली तीनके सहारे मनुष्य जीता है और उम्र पाता है; और चौथीके लिए जीता है और जीनेमें इस चौथीका सहारा भी उसे भरपूर लेना पड़ता है। इसलिए यह चौथी ही उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और न टाली जा सकनेवाली ज़रूरत है। (इस अन्तिम बात पर मिस्टर वी. के साथ थोड़ी-सी बहस अभी बाक़ी है।)

४—यह सङ्ग-साथ वाली चौथी ज़रूरत मनुष्यकी इसलिए है कि उसमें प्रेम करनेका स्वभाव मौजूद है और इसके लिए उसे किसी-न-किसी 'दूसरे' की या थोड़े वहुत 'दूसरों' की जरूरत पड़ती है। बिना 'दूसरे' के यह स्वभाव पनप नहीं सकता, बल्कि पैदा ही नहीं हो सकता।

५—बिना इस चौथी चीजके कोई मनुष्य डाक्टर, इंजीनियर, वकील शिक्षक, किसान, व्यापारी, सैनिक, नेता या और कुछ नहीं बन सकता। (इस सम्बन्धमें हमलोगोंने एक जंगली जातिके शिकारीका, जिसके बारे में यह दावा किया गया था कि वह किसीसे प्रेम नहीं करता, निरीक्षण किया था और अन्तमें बड़ी कठिनाईसे यह पता लगा पाये थे कि उसका भी एक डाकूसे प्रेम था, जिससे उसने पहले-पहल हथियार चलाना सीखा था।)

६—अगर किसी मनुष्यका ध्यान पहली तीन चीज़ोंमें ही लगा हो तो उसे वह चौथी चीज़ बिलकुल नहीं मिलेगी और पहली तीन चीजोंकी प्राप्ति भी कुछ कठिनाई और कमीके साथ होगी। और अगर किसीका ध्यान पहली तीनों चीजोंपर न होकर चौथी चीज पर ही हो तो उसे चौथी चीज भरपूर मिलेगी और पहली तीन भी उसे कुछ तंगी या आसानीके साथ ज़रूरत भरको मिलती रहेंगी।

मैं समझता हूँ कि गुफाओंमें बैठकर योगाभ्यास करनेवाले महात्माओं और जङ्गलोंमें रहकर जानवरोंका कच्चा मांस खानेवाले पशुमानवोंको छोड़कर शेष सब पर ऊपर लिखी छहों बातें लागू होती हैं।

मोटे तौरपर आपको भी इन बातोंमें एतराज़ नहीं होगा।

और यह भी आपको स्वीकार होगा—उसी मोटे तौर पर ही—कि दूसरोंके बीच रहनेके लिए मनुष्यमें प्रेमका कुछ माद्दा होना आवश्यक है।

लेकिन प्रेम बहुत तरहका होता है, जैसे माँ-बेटेका प्रेम, पति-पत्नीका प्रेम, किसी युवा-युवती यानी प्रेमी-प्रेमिकाका प्रेम, मित्र-मित्रका प्रेम, नातेदार-नातेदारका प्रेम, साझीदार-साझीदारका प्रेम, पड़ोसी-पड़ोसीका प्रेम, गुरु-शिष्यका प्रेम, मालिक-नौकरका प्रेम, ठग और बुद्धूका प्रेम, भूखे

और भंडारीका प्रेम, पापी और पुण्यात्माका प्रेम, कमजोर और बलवान का प्रेम, आदि-आदि ।

इन प्रेमोंमें से साफ़ तौर पर कुछ अच्छे और कुछ बुरे कहे जा सकते हैं; लेकिन अलग-अलग लोगोंकी राय हरएक तरहके प्रेमके बारेमें अलग-अलग हो सकती है ।

मिस्टर लवानियाकी रायमें मित्र-मित्रका, मिस्टर वर्माकी राय में मां-बेटेका, मिस्टर सरीनकी रायमे पति-पत्नीका, मिस्टर रोड़ाकी रायमें गुरु-शिष्यका, मिस्टर सिनहाकी रायमें प्रेमी-प्रेमिकाका, मिस्टर सारस्वतकी रायमें पापी और पुण्यात्माका और मिस्टर चावलाकी रायमें कमजोर-बलवान्‌का प्रेम सबसे ऊँचा है । मिस्टर भाटियाकी रायमें ठग और बुद्धूका, कामरेड शर्माकी रायमें भूखे और भंडारीका या कमज़ोर और बलवानका, मिस्टर आर्यकी रायमें गुरु और शिष्यका, मिस्टर शुक्ला के पिताकी रायमें पति-पत्नीका तथा मिस्टर अवस्थी, तहसीलदार साहब और मिस माथुरकी रायमें अविवाहित युवा-युवतीका प्रेम सबसे बुरा है ।

मिस्टर बी. ने एकबार किसी 'मूड' में कहा था कि माँ-बेटेके प्रेमसे बढ़कर भयंकर और पड़ोसी-पड़ोसीके प्रेमसे बढ़कर कल्याणकारी और कोई प्रेम नहीं हो सकता ।

ये सब रायें कुछ भी हों, यह तय है कि प्रेम किसी-न-किसी समय हरेक के लिए वांछनीय और आवश्यक है । और आम तौरपर अपने-अपने मौक़ोंपर हर तरहका प्रेम उचित ही कहा जा सकता है ।

जीवनके गहरे और अधिक आनन्द देनेवाले सुखोंकी समझ-बूझ जगाने और फिर उनका रस लेनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य समाजके बीच रहे, और समाजके बीच रहनेके लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरों से अपनी समझ और उनके सुभीतेके अनुसार किसी-न-किसी तरहका प्रेम करे ।

मनुष्यका यह प्रेम किसी एक व्यक्तिसे भी हो सकता है और अनेकसे भी और सभी मनुष्योंके लिए सहज स्वाभाविक भी ; यह लाभ और बदले

की आशामें भी हो सकता है और बिना किसी वैसी आशाके भी ; यह किसीसे कुछ लेनेके लिए भी हो सकता है और किसीको कुछ देनेके लिए भी; यह डरते-सकुचाते और चोरी-छिपे रूपमें भी हो सकता है और सरल और निर्भीक रूपमें भी ; यह मन-ही-मन सुलगनेवाले धुएंके रूपमें भी हो सकता है और तेज हवामें बुझ जानेवाले मशालके रूपमें भी और रात और बदलीमें अदृश्य हो-होकर भी सदा एकरस बनी रहनेवाली सूरजकी धूपके रूपमें भी ।

इन तरह-तरहके प्रेमोंमें कौन-सा अच्छा है और कौन-सा बुरा, इसका मैं कोई ऐसा उत्तर नहीं दे सकता, जो बिल्कुल ठीक ही हो और जिसे आप स्वीकार ही कर लें; लेकिन किस दर्जेके प्रेममें कितना मजा है, यह मैं शायद आपको किसी हदतक ठीक-ठीक बता सकता हूँ ।

प्रेमका पहला दर्जा वह है, जिसमें मनुष्यको किसी दूसरेकी कोई चीज पसन्द आ जाती है और वह उस चीजको अपने काममे लाना चाहता है— फिर चाहे उस दूसरेको इसमें सुख मिले चाहे दुःख मिले ; इस बातकी उसे परवाह नहीं होती ।

दूसरा दर्जा वह होता है जब मनुष्यको किसी दूसरेकी कोई चीज पसन्द आ जाती है, वह उसको अपने काम में लाना भी चाहता है और यह भी चाहता है कि ऐसा करनेमें उस दूसरेको कोई दुःख या हानि न हो, प्रत्युत सुख या लाभ ही हो तो अच्छा है । इस दर्जेमें वह यह भी चाहता है कि उसकी अपनी कोई चीज, कुछ बदलेके तौरपर, उस दूसरेके काममें आ सके और वह बिना अपनी हानि किये उसे वह चीज दे सके तो अच्छा है । वह लेन-देनका हिसाब बराबर रखना चाहता है ।

प्रेमका तीसरा दर्जा वह होता है जब मनुष्यको किसी दूसरेकी कोई चीज नहीं, बल्कि स्वयं वह दूसरा ही पसन्द आ जाता है । वह इस दर्जेमें उस दूसरेसे कुछ लेना नहीं, बल्कि उसे अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज देना ही चाहता है और हर तरहसे उसे सुखी रखना चाहता है । इस दर्जेमें चीजों और अपने-परायेपनसे उसका ध्यान हटकर अपने प्रियपर ही लग जाता है ।

प्रेमका चौथा दर्जा वह होता है जब मनुष्यका वह तीसरे दर्जेवाला प्रेम किसी एक मन-पसन्द व्यक्तिके लिए ही न रहकर प्रत्येक परिचित, पड़ोसी और परदेशीके लिए भी हो जाता है।

इसके आगे प्रेमके पाँचवें, छठे और सातवें दर्जे भी होते हैं, लेकिन मुझे उनका कोई अनुभव नहीं है।

क्या आप यह माननेको तैयार हैं कि मेरे हिसाबसे ऊपर लिखे प्रेमके चार दर्जोंमें से प्रत्येकमें अपने ऊपरके दर्जेसे कम और नीचेके दर्जेसे ज्यादा आनन्द है ?

मिस्टर कुशवाहा अभी अठारह सालके नौजवान ही हैं; बहुत नटखट और कुछ लोगोंके लिए खतरनाक भी हैं, लेकिन इन चारों दर्जेके प्रेमोंका—पहले तीनका पूरा और चौथेका थोड़ा-थोड़ा—उन्हें अनुभव है। वे ऊपरकी बातमें मुझसे बिलकुल सहमत हैं।

अपने मकानके पास वाले आमके बाग़के ठेकेदार मालीसे उनका प्रेम है। वह अक्सर उसके पास बैठते हैं और उससे मीठी-मीठी बातें करते हैं और चलते समय उससे कहते हैं—"लाना तो कल्लू दादा, उसी कलमी पेड़के दो-चार आम तो तोड़ लाना।" और कल्लू माली दो आम तोड़कर उन्हें ला देता है। मिस्टर कुशवाहा आमोंको लेकर चल देते हैं। माली पीछे भुनभुनाने लगता है, "आये लाट साहब कहींके, जब देखो आम दे दो, आम दे दो। बापके पैसे नहीं खर्च किये जाते बच्चूसे।" और उधर मिस्टर कुशवाहा अपने दोस्तोंसे कहते हैं—"यह कलुआ माली बड़ा खूसट है। दो आम तोड़ते इसकी नानी मरती है। इसकी कलूटी शकलसे मुझे नफ़रत होती है। इसकी छोकरी भी चेचकके दाग़वाली कितनी बदशकल और कलूटी है कि देखनेको जी नहीं करता। पहलेवाले मालीकी लड़की कितनी सुन्दर और हँसमुख थी! फिर भी आदमी सीधा है और जिस पेड़के आम मैं माँगता हूँ, उस पेड़के देनेमें बेईमानी नहीं करता।" उधर वह माली भी जानता है कि अगर किसी दिन कुँअर साहबको आम देनेसे इनकार किया तो दूसरे ही दिन उस पेड़का एक भी कच्चा, पक्का आम डालमें नहीं बचेगा।

मालीके साथ मिस्टर कुशवाहाका यह प्रेम पहले दर्जेका प्रेम है और इसका मज़ा, बिना किसी झंझट और शिकायतके, क़रीब-क़रीब हर दूसरे दिन दो मीठे आमोंके रसके बराबर है।

मि. कुशवाहाको घरपर स्कूलके सवाल हल करनेमें बेहद नफ़रत है। उनमें उनका मन भी नहीं लगता और वे उनके लिए होते भी बहुत कठिन हैं। इसलिए उनका एक ग़रीब पड़ोसी अक्सर उनके घर आता है और उनकी 'रफ़' कापी पर उन सवालोंको निकाल जाता है, जिन्हें वह अपनी असली कापीमें नकल करके अगले दिन मास्टर साहबको दिखा देते हैं। उस पड़ोसीसे भी उनको प्रेम है और अक्सर उसे घरमें खरीद कर आये हुए आमोंके खानेमें साझीदार बना लेते हैं। वे इस पड़ोसी लड़केकी अक्सर कुछ-न-कुछ खातिर करते रहना चाहते हैं। यह उनका दूसरे दर्जेका प्रेम है और इस प्रेममें उन्हें पहलेके मुकाबले ज़्यादा सुख मिलता है।

उनका तीसरे दर्जेका प्रेम अपने छोटे, तीन सालके चचेरे भाईसे है, जो अभी कुछ महीनेसे ही उनके घर आकर रहने लगा है। वह लड़का बहुत खूबसूरत और बातूनी है। मिस्टर कुशवाहाका सबसे गहरा प्रेम उस लड़के से है; और पड़ोसके मालीसे वे जो आम लाते हैं, अब इस बच्चेके लिए ही लाते हैं। यों तो आम उन्हें बहुत पसन्द है; लेकिन उसी हालत में वह उन्हें खाना पसन्द करते हैं जब उस लड़केके खानेसे वे ज़्यादा हों। खाने-खेलनेकी हर चीज, जो उन्हें पसन्द है, वह अगर इस बच्चेके पसन्दकी होती है तो वह पहले इसे ही देना चाहते हैं और उस चीजके स्वयं उपभोगसे ज़्यादा सुख उन्हें इस बच्चेको खिलानेमें मिलता है। इस प्रेमके सुखके मुक़ाबले पहलेके दोनों सुख उनके लिए फीके हैं।

और कभी-कभी मिस्टर कुशवाहाके मनमें ऐसी मौज उठती है कि अपने पसन्दकी खाने-खेलने या पहननेकी चीज किसी अपरिचित लड़के या बड़े को उसके माँगनेपर और कभी-कभी बिना माँगे ही, उसके लिए प्रिय या ज़रूरी समझकर यों ही उठाकर दे देते हैं। एक बार उन्होंने अपने छोटे भाईके लिए तराशा हुआ एक आम सारे-का-सारा उठाकर पास खड़े हुए

एक अपरिचित लड़केको दे दिया था। ऐसा वे कभी-कभी क्यों कर बैठते हैं, यह खुद उनकी समझ में नहीं आता; लेकिन उनका कहना है कि ऐसा करनेसे उन्हें जो सुख मिलता है, वह और किसी बातमें नहीं मिलता। वास्तवमें यह उनके चौथे दर्जेके प्रेमकी शुरुआत है।

मिस्टर बी. ने जब पहले-पहल मिस्टर कुशवाहाको देखा था, उस समय वे कल्लू मालीके बाग़में आमके एक पेड़के नीचे खड़े हुए मालीसे कुछ मीठी-मीठी बातें कर रहे थे और उनका एक साथी पहलेसे ही उसी पेड़के ऊपर पत्तोंमें छिपा हुआ चुपचाप आम तोड़-तोड़कर अपने थैलेमें भर रहा था। उस समय उनके पास से निकलते हुए, उन्हें देखकर मिस्टर बी. ने मुझसे कहा था—"इस लड़केको आपने देखा? मेरा अनुमान है कि यह अपनी नौजवानी पर पहुँची हुई एक ऐसी आत्मा है, जो इस समय अपनी 'एक-जन्म सम्बन्धी' बचपनकी अस्थायी अवस्थामें है और जल्दी ही उसे पार करके अपनी स्वाभाविक युवावस्थामें पहुँचनेवाली है और उसमें ३०-४० साल रहनेके बाद फिर कुछ वर्षोंके लिए एक अस्थायी बुढ़ापेको पारकर अपने स्वाभाविक युवावस्थाके कामोंमें लगेगी। इसमें काफी ऊँचे दर्जे तकके प्रेमकी योग्यता है। यह आत्मा औसत आदमीकी आत्माके मुकाबले अधिक जन्म लेकर अधिक समयसे प्रेम करना सीखती आई है और अब प्रेम करना इसका स्वभाव हो गया है। आप इससे परिचित होकर इसको अपना मित्र बना लीजिए—आपको इस लड़केमें बहुत-सी चीज़ें देखने और सीखनेको मिलेंगी।"

और अगले ही दिन मैंने मिस्टर कुशवाहासे जान-पहचान कर ली थी। उनमें मुझे अब सचमुच कुछ बड़ी चीज़ें उगती दिखाई दे रही हैं।

मनुष्यका चौथे दर्जेका प्रेम उनमें जाग रहा है और मनुष्य-जीवनकी चौथी आवश्यकता—सङ्ग-साथ की चाह—उनके जीवनमें भरपूर मौजूद है।

इस चौथी आवश्यकता और चौथे प्यार, और बचपन, जवानी और बुढ़ापेकी तीन अवस्थाओंके पार आत्माकी जवानीकी चौथी अवस्था वाली बात क्या अब आपको भी जँच रही है?

ज्ञानकी लीक

पिछला लेख लिखे जानेके बाद पिछली रात मेरे कुछ मित्रोंने उसपर बहुतसे ऐतराज किये हैं, और आगे कुछ लिखनेसे पहले उनकी चर्चा कर देना मैं जरूरी समझता हूँ।

लेखकोंका आम तौरपर यह क़ायदा है—और चूंकि मैं एक दर्जन किताबें लिख चुका हूँ, इसलिए लेखकोंमें मेरी गिनती अब होनी ही चाहिए—कि जो कुछ उन्हें कहना होता है लिखे चले जाते हैं, चाहे पढ़नेवाला उससे सहमत हो चाहे न हो। लेकिन मुझे अपने पाठकोंकी रायकी बहुत फ़िक्र रहती है, और मैं उन्हें बिना पूरी तरह साथ लिये आगे बढ़नेमें हिचकता हूँ। अपनी यह शैली मैंने अपने सबसे अधिक प्रिय और आदरणीय मित्र मि. बी. से सीखी है, जो कि लेखकोंके एक विशेष स्कूलमें पढ़ रहे हैं और अपनी पढ़ाई पूरी करके ३-४ सालमें एक लेखकके रूपमें मेरे-आपके सामने आने वाले हैं। तो पिछले लेखपर मेरे मित्रोंके खास ऐतराज ये हैं—

१—"पिछले लेखकी बातोंको ठीक मान लिया जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि मनुष्य सचमुच बार-बार जन्म लेता है। यह बात धार्मिक और शास्त्रोंकी जरूर है, लेकिन व्यावहारिक और 'साइंटिफ़िक' नहीं है। जो बात आदमी अपनी जानकारीके साथ व्यवहारमें नहीं ला सकता और जिसको तर्क और बुद्धिपर कसकर ठीक नहीं साबित कर सकता उसको लेकर नतीजे निकालना शिक्षित आदमियोंका काम नहीं है। जवानी मनुष्यकी स्थायी अवस्था है और प्रेम करना उसका स्थायी स्वभाव है, इससे अधिक ठीक तो यही जान पड़ता है कि बुढ़ापा उसकी स्थायी अवस्था है, जो क़ुदरती तौरपर उस पर जरूर आती है, और बचपन और जवानीकी तरह उसे छोड़कर चल नहीं देती, जबतक कि मौत ही आकर उसके जीवनको समाप्त न कर दे। इसीतरह प्रेम करना मनुष्यका स्थायी

स्वभाव नहीं, बल्कि मनमें उठनेवाले दूसरे भले और बुरे विकारोंकी तरह यह भी एक विकार है, जोकि कभी अच्छा होता है कभी बुरा।" यह मि. सक्सेनाका एतराज है।

२—"अगर शास्त्रों और धर्मोंको ही ठीक मान लिया जाय तो आपकी यह थ्योरी ग़लत ठहरती है। अगर आपकी आत्मा बार-बार जन्मोंमें प्रेम करनेकी मश्क करते-करते मौजूदा जन्ममें प्रेम करने का स्वभाव लेकर पैदा होती है तो इसके मानी यह हुए कि वह पिछले कई जन्मोंसे बराबर इन्सानका जन्म पाती चली आ रही है; क्योंकि बग़ैर इन्सानका जन्म पाये कुत्ते, साँप, मेंढक और छछूंदरकी योनियोंमें तो वह इस प्रेमका मश्क लगातार नहीं करती रह सकती। आप तो धर्म-शास्त्र पढ़े मालूम होते हैं, आपको मालूम होगा कि एक दफ़ा इन्सानका जन्म पानेके बाद जीव चौरासी लाख जानवरोंकी योनियोंमें जाता है तब कहीं फिर इन्सान बनता है। अलबत्ता अगर किसीने बहुत अच्छे कर्म किये तो वह जरूर अगले जन्ममें भी इन्सान बन सकता है लेकिन ऐसे पुण्यात्मा कितने हो सकते हैं और वे भी कबतक ऐसे कर्म करते रह सकते हैं कि चूकने न पायें ? यह तो किसी ख़ास-ख़ास आत्मासे भले ही सँभल सकता हो, आमतौर पर तो बिल्कुल ग़ैरमुमकिन है।"

यह मि. त्रिपाठीका एतराज है।

३—"आपकी इस थ्योरीको अगर लोग मान लें तो बस सभी प्रेम करने में ही लग जायें और समाजके सब प्रबन्ध और संसारके सब काम ठप हो जायें। यह तो भाईसाहब, अगर आप माफ़ करें तो भोग, अकर्मण्यता और विनाशका पाठ पढ़ानेवाला नुस्खा जान पड़ता है।" यह मि. सरीनका एतराज है। और इन एतराजोंको सुनकर मैं सोच रहा हूँ कि मिस्टर बी. की शैली मुझे मिस्टर बी. के लिए ही छोड़नी पड़ेगी; मैं उनकी नकल नहीं कर सकूँगा। इन तीनों एतराजोंके जवाबमें मुझे सिर्फ़ यही कहना है कि—

१—जो लोग पढ़ने, सोचने और समझनेके लिए तैयार हों उनके लिए रकर दोबारा जन्म लेनेका सिद्धान्त तर्क और साइन्सके ढंगपर ही सच्चा ाबित हो सकता है।

२—मैंने ऐसा कोई धर्म-शास्त्र नहीं पढ़ा जिसमें लिखा हो कि नुष्यको पाप कर्म करनेपर अगला जन्म मनुष्यका नहीं मिलता और उसे ौरासी लाख जानवरोंकी योनियोंमें जाना पड़ता है। मैं सहज बुद्धिसे, ौर अपने पढ़े हुए थोड़ेसे ग्रंथोंके आधारपर, यही समझता हूँ कि नुष्यको अगली बार मनुष्यका ही जन्म मिलता है; चाहे उसके कर्म ैसे भी हों।

३—मैं नहीं समझता कि प्रेमके छोटे-बड़े पाठ सीखे बिना कोई मनुष्य ोग, अकर्मण्यता और विनाशसे किसी तरह बच सकता है।

और अब मुझे अपनी बात आगे बढ़ानी चाहिए।

जब मनुष्य चीजोंसे आगे बढ़कर, लोगोंसे प्रेम करने लगता है और उसका प्रेम दर्जे-बदर्जे—पिछले लेखमें बताये हुए पहलेसे चौथे दर्जेतक—ागे बढ़ने लगता है तब उसे बहुत-सी नई बातें मालूम होती हैं।

उसे मालूम होता है कि खाने-पहनने और सैर-तफ़रीहकी चीजोंके अलावा भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिनमें उन चीजोंके मुक़ाबले ज्यादा ुख है।

किसी एक, या कुछ-एक, या बहुत-एकसे जरा गहरा प्रेम होने पर उसे अपने और अपने प्रियके दिलोंकी कुछ ऐसी भेदकी बातें मालूम होती हैं जिनमें नई-नई ताक़तें, करामातें और मजे होते हैं। संक्षेपमें मुझे कहना चाहिए कि उसे जो बातें मालूम होती हैं उन्हें ज्ञान कहते हैं।

तो फिर प्रेम करनेसे ज्ञान पैदा होता है।

मि. गुकर्जीकी राय है कि ज्ञान अच्छी चीज है, लेकिन कुछ लोग हदसे ज्यादा उसके पीछे पड़ जाते हैं—यह बुरा है।

एक हद तक संसारमें सुख और उन्नतिके लिए ज्ञान जरूर प्राप्त करना चाहिए; लेकिन बेकारके ख़याली ज्ञानके पीछे पड़कर ज्यादा समय

और बल नहीं बरबाद करना चाहिए, ज्ञानसे ज्यादा जरूरी चीज शक्ति है—पूरी कोशिश उसके लिए करनी चाहिए।

लेकिन कुछ लोगोंका विचार है कि ज्ञानमें शक्ति सहज ही भरी रहती है। और बिना ज्ञानकी शक्ति बेकार है और अक्सर खतरनाक भी है। इस सिलसिलेमें मेरे परदादाके जमानेकी एक घटना सुन लीजिये।

एक बापने अपने दोनों जवान बेटोंको उनकी माँके साथ कहीं परदेश रवाना किया। दोनों बेटोंके कन्धोंपर बापने डण्डोंके सहारे एक-एक पोटली लटका दी और उनसे कह दिया कि उनमें सफ़रका जरूरी सामान है।

चलते-चलते रास्तेमें दोनों भाइयोंको प्यास लगी। पासमें कोई नदी या तालाब उन्हें नहीं दिखलाई पड़ा। इसलिए माँको एक पेड़के साये में बिठाकर दोनों अपनी-अपनी पोटली कन्धोंपर लटकाये, पानीकी खोज में निकल पड़े।

कुछ देर इधर-उधर भटकने पर उन्हें एक बड़ा भारी गड्ढा दिखाई दिया—उसके भीतर झाँकने पर उसमें उन्हें पानी भी दिखाई दिया।

वास्तवमें वह जंगलमें एक पुराना कुआँ था और इन भाइयोंने अब तक कभी कुआँ नहीं देखा था—क्योंकि इनके देशमें नदियों और तालाबों से ही पानी लिया जाता था।

बड़े भाईने, जो खूब हट्टाकट्टा और हिम्मती था अपने छोटे भाईसे, जो दुबला-पतला और हौसलेका कुछ कच्चा था, कहा—

"इस गहरी तलैयामें पानी है, मैं पहले कूदकर पानी पी आता हूँ, बाद में तुम पी आना," और वह कुएँमें कूद गया। छोटे भाईको एकदम ध्यान आया कि शायद उसकी माँ भी प्यासी होगी, इसलिए उसको भी यहाँ लाकर पानी पिला देना चाहिए। वास्तवमें इस लड़केको अपनी माँसे प्रेम था और बड़ा लड़का एकदम बुद्धू और रूखा था। छोटा लड़का बड़ेको कुएँके भीतर ही छोड़कर माँको लेने चल दिया और जब उसे कुएँके पास ले आया, तो खुद भी कुएँमें कूदने लगा।

कूदनेके पहले (चूंकि उसे अपनी माँसे प्रेम था) उसे ध्यान आया कि कोई बरतन भी साथ लेता जाय जिससे माँके लिए पानी भर लाये। बर्तन ढूँढ़ने के लिए उसने अपनी पोटली खोली तो उसमें उसे एक लोटा मिला, जिसमें एक लम्बी डोरी भी बँधी हुई थी। वह लोटा खाली करनेके लिए डोर खोलने लगा।

उसकी माँ बड़ी बुद्धिमती थी। उसे एक और बढ़िया तरकीब सूझ गई और उसने बेटेको सलाह दी कि लोटेको डोरमें बाँधे हुए कुएँमें लटकाये और जब उसमें पानी भर जाय तब उसे उस डोरके सहारे ही ऊपर खींच ले।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि उन लड़कोंका पिता उनकी मातासे भी अधिक बुद्धिमान था, उसे देश-विदेशका अनुभव भी बहुत था और वह जानता था कि किसी-किसी देशमें इस तरहसे कुँओंसे पानी भरा जाता है, और इसीलिए उसने अपने दोनों बेटोंकी पोटलियोंमें एक-एक लोटा डोर भी रख दिया था।

अगर बाप कुछ और ज्यादा बुद्धिमान होता तो उसे अपने लड़कोंकी बुद्धियोंका पता होता और वह उन्हें परदेश भेजनेसे पहले उन पोटलियों की हर चीजोंका उपयोग खोलकर समझा देता।

माँ-बेटोंने लोटोंसे भर-भर कर पेट भर पानी पिया। बड़ा बेटा उस कुएँसे शायद कभी बाहर नहीं निकला, क्योंकि वह उन्हें उनके सफ़रकी किसी भी मंजिलमें नहीं मिला। उसकी खोजके सिलसिले में यह किस्सा और भी बहुत आगे तक चला, लेकिन उससे हमें इस जगह कोई मतलब नहीं है।

इन दोनों भाइयोंमें बड़ेके पास शक्ति अधिक थी और छोटेके पास प्रेम; और प्रेमकी बदौलत उसे ज्ञान भी अधिक मिल गया था।

प्रेमकी बदौलत ज्ञान होता है या ज्ञानकी बदौलत प्रेम; इस मामले में मेरे मनमें कोई पक्षपात नहीं है। मैं समझता हूँ कि इनमेंसे किसी भी एक चीजकी बदौलत दूसरी चीज पैदा हो सकती है।

तो फिर ज्ञान क्या है?

संसारकी रचना कैसे हुई, परब्रह्म तत्त्वका स्वरूप क्या है, पतञ्जलि के ३५ वें सूत्रकी व्याख्या क्या है, विष्णु और शिवमें कौन बड़ा है, इन्द्र-लोककी अप्सराओंमें सबसे सुन्दर कौन है, मोहनप्रयोग तथा अणिमा सिद्धि की क्रियाएँ क्या हैं, चान्द्रायण व्रतका महत्त्व क्या है—इन और ऐसी ही बातोंकी जानकारीको ज्ञान कहते हैं। अवश्य इन बातोंकी जानकारीको ज्ञान कहते होंगे, लेकिन ये बातें फ़िलहाल मेरे लिए कुछ कठिन हैं, इस-लिए मैंने ज्ञानकी एक बहुत ही सरल परिभाषा—परिभाषा नहीं बल्कि एक काम-चलाऊ व्याख्या—बना रक्खी है; और मेरा अनुमान है कि यह व्याख्या आपको भी पसन्द आयेगी। मैं नीचे लिखी छह बातोंकी छानबीन और जानकारीको ज्ञान समझता हूँ।

१—मुझे किस चीज़की ज़रूरत है ?

२—उन चीज़ोंके पानेका उपाय क्या है ?

३—उन चीज़ोंको पानेके लिए क्या-क्या साधन हैं ?

४—उन चीज़ोंको पानेपर उनका उपयोग मेरे लिए कितना और कितने समय तक के लिए होगा ?

५—उन चीज़ोंके महत्त्व यानी उपयोगिता और आवश्यकताकी दृष्टि से किसका कौन-सा दर्जा यानी नम्बर है, और उन चीज़ोंका आपसमें विरोध या सहयोगका कैसा नाता है ?

६—इस सब जानकारीके साथ-साथ इन चीज़ोंको पानेके रास्ते पर तेजी और सावधानीके साथ बढ़ने और बढ़ावका हिसाब-किताब रखने की तरकीब क्या है ?

अगर इन छहों बातोंपर सोच-विचार करके आप अपने लिए कुछ नतीजे निकाल लें तो मुझे आपको ज्ञानी कहनेमें कोई हिचक न होगी।

ऊपरवाली दुर्घटनामें जब उन दोनों भाइयोंको प्यास लगी तो उन्हें यह ज्ञान तो हो गया कि उन्हें प्यास लगी है और उसका उपाय किसी जलाशयकी खोजकर उससे प्यास बुझा लेना है, लेकिन कुँएके पास पहुँच-कर उन्हें यह ज्ञान नहीं आया कि उनका समझा हुआ उपाय अभी अधूरा ही

है और कुएँमें कूदना जानके लिए खतरनाक भी हो सकता है। उन्हें यह भी ध्यान नहीं हुआ कि वे कुएँसे पानी पीनेके साधनोंको देखें कि उनके पास कोई और साधन मौजूद है या नहीं।

और वे दोनों तो खैर जंगली आदमी थे, मुझे अब कुछ ऐसा लगने लगा है कि हमारे-आपके पास भी बहुत-से ऐसे साधन भरे-पड़े हैं, जिनके सहारे आपकी सभी जरूरतें बहुत आसानी और खूबसूरतीके साथ पूरी हो सकती हैं और जिनकी तरफ़ आप बिल्कुल ध्यान नहीं देते। इन साधनों की गिनती और उपयोगिता तथा शक्ति और सुकरताकी आप कभी कल्पना तक नहीं कर सकते, जैसे कि बड़ा भाई अपनी पोटलीमें छिपे हुए लोटे-डोर की कल्पना नहीं कर सका था। अपने पास मौजूद साधनोंकी जानकारी महान् आश्चर्यजनक और बड़ा आनन्ददायक ज्ञान है। आज़माइशके तौर पर आप चाहें तो पहले ऊपरके छह ज्ञानोंमें से इसी तीसरेकी छानबीन शुरू कर सकते हैं।

इन ज्ञानोंके क्रममें इस तरहका उलटफेर किया जा सकता है—मैं खुद इसी तीसरेसे ही शुरू कर रहा हूँ और मेरे जैसे बहुतेरोंके लिए इससे ही शुरू करना शायद अधिक आसान और रुचिकर होगा।

बिना इस बातकी खोज किये हुए कि मुझे किस-किस चीजकी जरूरत है मैंने पहले ही यह पता लगाना शुरू किया है कि मेरे पास कौन-कौनसे ऐसे साधन हैं जिनसे चीजें प्राप्त की जा सकती हैं, और इस खोजमें मुझे जो-जो चीजें मिली हैं वे बहुत शुरूआती होते हुए भी बड़ी आश्चर्यजनक और विचित्र शक्तियोंसे भरी हुई हैं।

अगले लेखमें मैं उनकी चर्चा करूँगा।

मंज़िल दूर है !

"इस लेखको अपने पिछले वादेके अनुसार शुरू करनेके पहले मेरी दो बातोंके जवाब दे दीजिये," मिसेज़ चतुर्वेदी कह रही हैं। वह आजका लेख प्रारम्भ करनेसे पहले ही यहाँ आ गई हैं और उन्होंने पिछले लेख पढ़े हैं।

"पहली बात यह है कि आपने इस लेखमालाके दूसरे खंडको 'प्रेम' के विषयसे प्रारम्भ किया था और अब आप एकदम ज्ञानके विषय पर आ कूदे हैं। इस विषय-परिवर्तनका कोई ठीक सिलसिला नहीं मिलता। और दूसरी बात यह कि अब आप जिस ढंगसे ज्ञानका उपदेश देने जा रहे हैं उससे जान पड़ता है कि आप ज्ञानके साथ-साथ किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेषका भी प्रॉपेगैंडा करना चाहते हैं, कि लोग आपके बताये हुए रास्ते पर चलें। अपनी लेखनीको क्या आप ज्ञान और धर्म जैसे विषयोंके लिए उपयुक्त समझते हैं ?"

मिसेज़ चतुर्वेदीको मैं तबसे जानता हूँ, जब वह एक स्थानीय कालेजमें मिस अग्रवाल थीं। प्रेमसे ज्ञानके विषय पर जाते हुए, बहुत सम्भव है, मेरे सिलसिलेमें कुछ ढीलापन या बेतुकापन आ गया हो; लेकिन वैसा करनेमें मेरा मतलब यही रहा है कि प्रेमसे ज्ञान ज़रूर पैदा होता है। और जिस दर्जेका वह प्रेम होता है उसीसे मिलते-जुलते दर्जेका ज्ञान भी प्रेमीको हो जाता है। मुझे शायद उस सिलसिलेमें यह और दिखाना चाहिए था कि जब प्रेम बहुत आवेशपूर्ण, भावुक और उन्मादपूर्ण-सा होता है तो उससे जो ज्ञान पैदा होता है वह मामूली तौर पर देखनेमें बेवकूफ़ी, बदहवासी और बेखबरी-सा मालूम पड़ता हुआ भी एक दूसरे ही तरह का ज्ञान होता है, जिसमें कभी-कभी टेलीपैथी या दूसरेके विचारोंको जान लेना, क्लेयरवाएंस, यानी अदृश्य या दूसरे देशकी चीज़को देख लेना, क्लेयर आडिएंस यानी न सुनाई देने वाली या दूर देशकी बातको सुन लेना, जैसी तरह-तरहकी

बातोंका ज्ञान और उनका उपयोग उस प्रेम करनेवालेको आ जाता है। अपने प्रियकी रूमाल, अँगूठी या और कोई चीज़ हाथमें आ जाने पर वह उसके सम्बन्धमें बहुत-सी नई बातें देखने-सुनने लग जाता है। यह सब एक तरह का ज्ञान ही है। कोई प्रेमके किसी एक दर्जे पर पहुँच कर ज्ञान की तरफ़ ध्यान देता और उसे समझ-बूझ कर काममें लाता है और कोई किसी दूसरे पर पहुँच कर; लेकिन ज्ञान उसे दर्जेके अनुसार होता अवश्य रहता है।

मेरा अनुमान है कि शायद मिसेज़ चतुर्वेदी यह भी चाहती हैं कि मैं ज्ञान पर न लिखकर प्रेम पर ही लिखे जाऊँ। अगर ऐसा है तो मैं उनके आक्षेपमें अपने लिए एक मिठास भरी प्रशंसा भी देखता हूँ और उसके लिए आज एक बार और, उनका अनुग्रहीत हूँ।

और मिसेज़ चतुर्वेदीके दूसरे आक्षेपने तो मेरे एक बहुत बड़े सोये हुए अरमानको जगाकर मेरी एक बहुत बड़ी, लेकिन इस जीवन भरके लिए बुझी हुई, आशामें एक क्षणके लिए बिजली-सी कौंधा दी है।

मेरे जीवनका एक बहुत बड़ा अरमान यह था, और यह शायद काफ़ी बचपनकी उम्रसे ही था कि मैं इतना बड़ा ज्ञानी और महात्मा बनूँ कि सारी दुनिया मुझसे ज्ञान और उपदेश सुननेके लिए दौड़ी चली आये, और जिन रोती-बिलखती औरतोंको मैं हाथ उठाकर आशीर्वाद दे दूँ उनके मरे हुए बच्चे मुसकराते हुए जी उठें और दूसरे सब लोगोंके सब दुख-दर्द फ़ौरन दूर हो जायें। मैं बुद्ध और महात्मा ईसा होना चाहता था।

मैं यह भी चाहता था कि स्वामी रामकृष्ण परमहंसको मानने वाला जैसा एक समाज या संप्रदाय उनके जीवनकालके बाद बन गया है, वैसा ही मुझे मानने वाला मेरे जीते जी ही बन जाये तो बहुत अच्छा हो।

यह तब की बात है जब मिस अग्रवाल (यानी मिसेज़ चतुर्वेदी) मुझे नहीं जानती थीं और मैंने तीसरे दर्जेका भी प्रेम करना साफ़-साफ़ नहीं सीखा था।

लेकिन मि. वी. से मेरा परिचय होनेके कुछ दिन बाद यह अरमान और इसके पूरे होनेकी आशा, दोनों मेरे जीवन भरके लिए विदा हो गये। इस विदाईकी घटना इस प्रकार हुई।

एक दिन जब मैं और मि. वी. जमुना किनारे टहल रहे थे हमने देखा कि कुछ लड़के एक गधेको चारों तरफ़से घेर कर पत्थर मार रहे थे और वह किसी तरफ़से भी भाग नहीं पाता था। एक और आदमी पास ही खड़ा हुआ यह तमाशा देख-देख कर हँस रहा था।

मैं उन लड़कोंको मना करनेको ही था कि मि. वी. ने मुझे रोक दिया और उस आदमीके पास पहुँच कर उससे कहा, "तुम खड़े-खड़े हँस रहे हो और इन लड़कोंको रोकते नहीं; बेचारे गधेको घायल किये डालते हैं।" आदमीने वैसे ही हँसते हुए जवाब दिया—"बाबूजी, ये बच्चे हैं, खेल रहे हैं। गधा सुसरा मर थोड़े ही जावेगा!"

"तुम देखते नहीं उसकी टाँगसे खून निकल रहा है, ऐसा कस कर पत्थर उसकी टाँगमें लगा है। मरेगा तो वह टाँग तोड़नेसे भी नहीं। तो क्या तुम उसकी टाँग तुड़वा दोगे?"

इस पर उस आदमीको कुछ गधे पर तरस और कुछ मि. वी. की बात का लिहाज़ आ गया और उसने लड़कोंको डपटकर उस गधेको बचा दिया।

वहाँसे चलते हुए मि. वी. ने मुझसे कहा, "इस आदमीकी समझ अभी इतनी है कि गधेको ईंट-पत्थर मारनेमें कोई बुराई नहीं है, लेकिन उसे ज्यादा चोट आ जाय तो इसमें बुराई है और वैसी हालतमें उसे बचा लेना चाहिए।"

कुछ ही दिन बाद कुछ दूरी परसे हम दोनोंने देखा, उसी जगह वे लड़के एक और गधेको उसी तरह छेड़ रहे थे कि वही उस दिन वाला आदमी आगे बढ़ा और दो-चार गालियाँ देकर उसने उन लड़कोंको भगा दिया। लड़के इधर-उधर भाग ही रहे थे कि एक तरफ़से एक और आदमी दौड़ा हुआ आया और उसने एक लड़केको, जो उसके हाथ लगा, पकड़कर बुरी तरह पीटना शुरू किया। इसपर हमारे परिचित आदमीने आगे बढ़कर

उस लड़केको छुड़ा दिया; और इन दोनों आदमियोंमें गाली-गलौज के बाद हाथापाईकी नौबत आने ही वाली थी कि हम दोनों पास पहुँच गये और मि. वी. के बीच-बचावसे वह मामला शान्त हो गया ।

अबकी बार यह पूर्व परिचित आदमी हमारे साथ बड़ी खातिरसे पेश आया । उसने कहा—

'बाबूजी, दया सब जीवों पर करनी चाहिए, जान सब जीवोंके साथ होती है । आपकी उस दिन वाली बात मेरी समझमें आ गई थी, इसीलिए आज मैं खुद ही लड़कोंको बरजने गया था । लड़के बातसे न मानते तो मैं उनके दो-चार थप्पड़ भी लगा देता; लेकिन उस धोबीको तो देखो, बेचारे लड़केको ऐसा मारने लगा कि छोड़े ही नहीं—मैं न बचाता तो उसकी पसली ही तोड़ देता । सजा देनी चाहिये, लेकिन माफिक भर की; जितना क़सूर उतनी मार । ठीक कहता हूँ बाबूजी ?"

"तुम बिल्कुल ठीक कहते हो गुरू," मि. वी. ने जवाब दिया ।

"दया सब जीवों पर करनी चाहिये, चाहे गधा हो चाहे घोड़ा, और सजा भी माफ़िक भरसे ज्यादा किसीको न देनी चाहिये ।"

"तुम्हारी बात पक्के ज्ञानकी है ।" मि. वी. ने कहा ।

"आप लोग तो बाबूजी पढ़े-लिखे और ज्ञानवान् पुरुष हो, और हम तो निपट गँवार हैं, लेकिन घोड़ा क्या सुअर भी हो तो उसकी भी रक्षा करनी चाहिए ।" उस आदमीने कहा ।

"और गधेको मारने पर उस धोबीको उस लड़केको इतना नहीं मारना चाहिये था—दो-चार चाँटे-घूंसे मार लेता, वही काफ़ी था ।" मि. वी. ने कहा ।

"गधेको मारने पर कहते हो बाबूजी, इतनी मार तो उस धोबीको तब भी उस लड़केको नहीं लगानी चाहिए थी जो उन लड़कोंने उस धोबी के गधेको नहीं, बल्कि उसके पूतको भी मारा होता । लड़कोंने दस-पाँच भुरभुरी मिट्टीके ढेले ही तो मारे थे ।"

और वहाँसे चलने पर मि. बी. ने मुझसे कहा—"इस आदमीका ज्ञान चार दिनमें बहुत ज्यादा बढ़ गया है। वह जानता है कि किसी पालतू जानवर या मनुष्यको बिना अपराध पीड़ा न पहुँचानी चाहिए, और अगर कोई उन्हें कष्ट दे तो उससे उसे बचाना चाहिए, और कष्ट देने वालेको सजा देनी चाहिए। और इससे भी बढ़कर वह मानता है कि सजा जितना क़सूर हो उससे अधिक नहीं देनी चाहिए।

"यह आख़िरी काफ़ी बड़ी समझकी बात है और आम तौर पर लोग ग़ैरोंके मामलेमें इस समझको बरत भी सकते हैं। लेकिन दुनियाका बहुत बड़ा तमाशा यह है—और इसकी वजह यह है कि आम दुनिया वालोंका अभी दर्जा ही ऐसा है कि माने हुए सिद्धान्तों और ठीक अन्दाजी हुई कार्रवाइयोंको अपना मामला पड़ने पर नहीं बरत सकते। किसी बातको ठीक समझना एक दर्जेका सबक़ है, और उसको अपने काममें लाना बिल्कुल दूसरे दर्जेका। और इन दोनों दर्जोंके बीचमें बहुत लम्बा अन्तर है।"

मि. बी. की बात उस समय मुझे कुछ अधिक मौक़ेकी नहीं जान पड़ी; लेकिन दस-बारह दिन बाद जब हमने उस आदमीको तीसरे दृश्यमें देखा तो मेरी दिलचस्पी मि. बी. की उपर्युक्त बातोंमें बेहद बढ़ गई।

उस दिनके दस-बारह दिन बाद ऐसा हुआ कि उन्हीं लड़कोंने उस आदमीके बैलको उसी तरह, वहीं किनारे घेरकर दस-बीस ढेले उस पर बरसा दिये; और संयोगवश वह आदमी उस समय उधरसे निकला तो उसे लड़कों पर इतना क्रोध आया कि उसने दो लड़कोंको, जो उसके हाथ लगे, इतना पीटा कि एकके हाथकी हड्डी और दूसरेके मुहँका दाँत टूट गया। और जब मैंने अपनी असावधानीमें, उस आदमी पर कुछ दोष लगाते हुए उससे उसके पिछले दिनके ज्ञानकी बात कही तो उसके उत्तरको सुनकर मैं हैरान ही रह गया।

संक्षेपमें, उसने हमें बताया कि यह सब हम दोनोंकी ही करतूत थी, और हमीं दोनोंने उन लड़कोंको बहका कर उसके बैलको पिटवाया है, और वह धोबी भी हमारे ही कपड़े धोने वाला धोबी है। हमारी भलमन-

साहतको उसने समझ लिया है और अगर अब कभी हम उधर टहलने आये तो वह हमको भी अच्छी तरह देख लेगा ।

"जाने भी दो दादा, मेरे इन दोस्तकी ऐसी छेड़छाड़ करनेकी आदत है। इनकी बातका बुरा न मानना ।" उस आदमीसे कहते हुए मि. बी. ने आगे की ओर मेरा हाथ दबाया और हम दोनों आगे बढ़ गये ।

"मैं उसदिन आपसे कह रहा था" मि. बी. ने बातचीत शुरू करते हुए कहा, "कि किसी बातको ठीक मानना एक दर्जेकी बात है और उसे अपने मामलेमें बरतना दूसरे दर्जे की । इन दोनों दर्जोंमें बहुत लम्बी—कहना चाहिये, मनुष्यके कई जन्मोंके अनुभवकी—दूरी है । औसतकी दृष्टिसे यह एक बहुत अच्छा आदमी है । इसके अगर पिछले दस जन्मोंको देखा जा सके तो मैं कुछ-कुछ मोटे तौर पर अन्दाज लगा सकता हूँ कि अपने दसवें जन्ममें (इस जन्म को जन्म नं० १ मानकर गिनने से) इसे दूसरोंको कष्ट देकर उसका तमाशा देखनेमें मजा आता रहा होगा और उनके दुख-दर्द का इसको कुछ भी अनुमान न रहा होगा; आठवें जन्ममें इसे दूसरोंको कष्ट में देखकर मजा तो आता रहा होगा, लेकिन अधिक कष्टको देखकर कुछ दया भी आ जाती रही होगी; पांचवें जन्ममें इसे समझ आई होगी कि किसी भी जीवको बिना अपराध कष्ट देना बुरा है; चौथेमें इसने सताये जाने वालोंका कुछ पक्ष लेनेका पाठ सीखा होगा; इस जन्ममें शायद यह सीख रहा है कि सताने और सताये जाने वालेके बीचमें पड़कर किसी सीमित हिसाबसे ही पहलेको सजा देनी और दूसरेका बचाव करना चाहिए। और सम्भवतः अबसे बीस जन्म बाद इसे यह समझ आयेगी कि न्याय और व्यवहारके ठीक समझे हुए सिद्धान्तोंको अपने मामलोंमें कड़ाई और ईमान-दारीके साथ लागू करना चाहिये । यह बात अभी आप हर्गिज इसके भीतरी मन और दैनिक व्यवहारमें नहीं ला सकते ।"

"इतनी-सी बात सीखनेके लिए बीस जन्म !" मैंने विस्मित होकर कहा ।

"इतनी सी बात नहीं यह तो एक बहुत बड़ी बात है। इतनी बात सीखते-सीखते तो आदमी दूसरी बातोंमें न जाने कितना आगे बढ़ जायगा।" मि. वी. ने कहा।

"लेकिन मैं तो इसी जन्ममें बुद्ध और ईसाका सा ज्ञान और उनकी-सी गति प्राप्त करना चाहता था; उन्हींकी तरह संसारमें काम और नाम करना चाहता था। आपके हिसाबसे तो यह इस जन्ममें सम्भव नहीं होगा।" मैंने कुछ चिन्तित होकर कहा।

इस पर मेरे मित्रने मुसकराते हुए कहा—

"हो सकता है कि ऐसा हो जाय। मुमकिन है आपकी आत्मा इतनी ऊँची हो और आपकी चाल इतनी तेज हो कि आप बहत्तर जन्मोंकी यात्रा एक ही जन्ममें पूरी कर ले जायें।"

"क्या आप खुद बुद्ध और ईसाकी-सी गति प्राप्त करनेकी इच्छा और आशा नहीं रखते! मैं तो समझता था कि आप उन्हींके रास्ते पर चल रहे हैं।" मैंने कहा।

"बेशक मैं उन्हींके रास्ते पर चल रहा हूँ, और एक दिन मैं भी उस दर्जे पर हूँगा, जिस पर दुनियाने उन्हें देखा था। मैं जरूर कभी न कभी उस दर्जे पर हूँगा, क्योंकि दुनियाका हर आदमी कभी-न-कभी उस दर्जे पर होगा।"

"यह एक विचित्र बात है। आप उस दर्जे पर होंगे और हर एक आदमी होगा और मैं भी हूँगा। लेकिन कब? कैसे?" मैंने उत्सुक होकर पूछा। और मेरे इस प्रश्नके उत्तरमें हमारी बातचीत पूरे छह घंटे और चली, और मैं उनकी हरएक बात पर एक श्रद्धालु भक्तकी तरह उस समय विश्वास करता गया और उसी बीच मुझसे एक ऐसी बात हो गई, जिसके लिए मुझे बादमें बहुत दिनों तक शर्मिन्दा रहना पड़ा। मैं अचानक, न जाने कैसे आवेशमें वी. के पैरों पर जा गिरा था और वी. ने मुझे अपनी बाहोंमें समेट लिया था, और मेरे आँसुओंसे उसकी बाँह और छातीके वस्त्र भीग गये थे।

"तुम हो कौन.....?" मैंने वी. का पूरा नाम लेकर कहा, "तुम्हारा यह ज्ञान तुम्हें कहाँसे मिला है? तुम मुझे इतना प्यार क्यों करते हो! तुम मुझे इतने अच्छे, कभी-कभी उस लड़की नीलमसे भी बहुत अच्छे क्यों लगते हो? मैं तुम्हें समझ क्यों नहीं पाता?"

मुझे याद है, उस समय नीलमका नाम याद लानेमें मुझे क़रीब एक मिनट लग गया था। उन दिनों मेरी उम्र अठारह सालकी थी।

"मैं तुम्हारा मित्र हूँ। क्या इसमें तुम्हें अभी कुछ सन्देह है? मैं जन्म-जन्मान्तरसे तुम्हारे आस-पास जन्म लेता आ रहा हूँ। मैं तुम्हें बराबर प्यार करता आ रहा हूँ। तुम्हारी कभी-कभी की ग़लतफ़हमियों, खुदगर्जियों और सख़्तियोंकी भी परवाह न करके मैं तुम्हें प्यार करता आ रहा हूँ। मैं तुम्हें कई जन्मोंसे प्यार करता आ रहा हूँ। क्योंकि मैं तुम्हारी प्रेम करनेकी योग्यताओं और कुछ दूसरी खूबियों पर मुग्ध हूँ। मैंने भी तुमसे बहुत कुछ पाया है। तुम्हारा ऋणी हूँ। जीवनकी पाठशालामें तुम मेरे सहपाठी हो। और प्रेमके बहुतसे अनिवार्य पाठ मैंने तुम्हारे सम्पर्क से ही सीखे हैं। और तुमने"—वी. का स्वर अब कुछ चंचल हो उठा और उसकी आँखोंमें एक अजब-सी चमक चमक उठी। "तुमने भी मुझे दुःख देनेमें कोई कसर नहीं उठा रक्खी। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि इस जन्ममें और इसमें कुछ कसर बची तो अगलेमें अवश्य मैं तुम्हें पूरी तरह जीत लूँगा।"

मेरा नाम लेते-लेते अब वी. का स्वर नदीकी उस सुनसान रेतीमें, चौदसके चाँदके नीचे, फिर बहुत कोमल, गम्भीर—ऐसा, जैसा कि उसके पहले और उसके बाद फिर कभी नहीं सुना—हो गया, "तुम्हारे लिए मेरे मनमें क्या है यह न तुम समझ सकते हो और न मैं ही अच्छी तरह तुम्हें समझा सकता हूँ।"

"इस जन्ममें....." मैंने वी. का नाम लेकर कहा, "तुमने मुझ पर जो कुछ किया वह मेरा दिल जानता है। अब अगले जन्ममें तुम मुझे जीतने के लिए और क्या करोगे?"

मि. बी. ने इस पर कहा—

"तुम्हारे और नीलमके बीच......"

लेकिन आप, जो इन पंक्तियोंको पढ़ रहे हैं, इस लेखकी लम्बाईसे अब ऊब उठे होंगे। मुझे जल्दी करनी चाहिये।

उस रातकी मि. बी. की बातोंमेंसे करीब ९० फ़ीसदीको मैंने क़रीब एक सप्ताह बाद मि. बी. के मुँह पर चुनौती दे दी। उस रातकी अपनी अन्धश्रद्धा पर मुझे बादमें हँसी भी बहुत आई।

लेकिन उस रातकी उनकी बातोंसे मुझे एक बहुत बड़ी सचाई—बड़ी और कड़वी सचाई—भी मिल गई और वह यह कि मैं इस जन्ममें बुद्ध और ईसाके बराबर और उनके जैसे सम्मानका अधिकारी नहीं हो सकूँगा।

उनकी जिन दस फ़ीसदी बातोंको मेरी तर्क और बुद्धिने स्वीकार कर लिया है उनके अनुसार मैं मानता हूँ कि आदमी बहुत छोटीसे लेकर बहुत बड़ी हैसियत तककी चीज़ है।

उस ऊँची-से-ऊँची हैसियत तकका अधिकार हर एक आदमीको प्राप्त है और वह बराबर अपनी निजी योग्यताके अनुसार तेज़ या धीमी चालसे उस हैसियतकी तरफ़ बढ़ रहा है; और एक न एक दिन उस तक ज़रूर पहुँचेगा। अपनी इस यात्रामें वह सचमुच बार-बार मरकर जन्म लेता है। और प्रेम भी एक ऐसी चीज़ है, जिसकी कोई-कोई रस्सी इतनी मजबूत बट जाती है कि जन्म और मौतकी तेज़-से-तेज़ छुरियोंसे भी नहीं कटती; और जो दो या अधिक मनुष्य ऐसी रस्सीमें एक बार बँध जाते हैं उनका अगले कई जन्मों तक किसी-न-किसी रूपमें साथ चलता रहता है। आदमीकी उस यात्राका एक बिलकुल निश्चित मार्ग—मार्ग नहीं दिशा कह लीजिये—है और उसकी बिल्कुल निश्चित मंजिलें या दर्जे हैं और बिना निचले दर्जेकी योग्यता प्राप्त किये कोई भी अगले दर्जोंमें नहीं जा सकता। मैं जानता हूँ कि मि. बी. की सी अच्छाइयाँ, उनका सा दिल और उनकी-सी बुद्धि मेरे पास नहीं है और मेरी चालकी रफ़्तार उनकी

जितनी तेज़ हर्गिज़ नहीं है । मेरा पूरा विश्वास है कि मैं उनसे आगे कभी नहीं निकल सकता ।

मि. वी. इस जन्म भर में महात्मा नहीं हो सकते, यह उनका अपना ही कहना है । महात्मा होनेके लिए, उनके हिसाबसे, कुछ खास निश्चित गुणों की—जिन्हें वह 'आज़ादियाँ' कहते हैं—ज़रूरत है ।

ये गुण या आज़ादियाँ गिनतीमें दस हैं और मि. वी. को उनमेंसे एक भी अभी प्राप्त नहीं है । उन दस आज़ादियोंकी चर्चा में मौक़ा पड़ा तो कभी आपके सामने करूँगा ।

मि. वी. के क्या, किसीके भी हिसाबसे मैं चूंकि किसी घटिया या आसान दर्जेका महात्मा नहीं होना चाहता और वे दसों आज़ादियाँ अभी मुझे मेरे वससे बहुत बाहरकी मालूम पड़ती हैं; इसीलिए मैंने भी इस जन्म में महात्माई करनेका हौसला छोड़ दिया है । मि. वी. की इस जन्मकी बड़ी-से-बड़ी आशा यह है कि वह बाक़ायदे और बाज़ाब्ते एक खास महात्मा के चेले बन जायेंगे—वैसे, उस महात्मा और उसके कुछ चेलोंके साथ उनका एक हल्का-सा सम्पर्क पिछले जन्मोंसे ही चला आ रहा है । और मेरी बुद्धिमानी इसीमें है कि मैं उनकी इस आशासे बड़ी आशा अपने लिए न रक्खूं । इस पूरे लेखको लिखनेमें मुझे क़रीब तीन घंटे लग गये हैं और मिसेज़ चतुर्वेदी मेरे पास अपनी जगह पर अब भी वैसे ही बैठी हुई मेरा लेख पूरा होनेकी राह देख रही हैं ।

जमना किनारे इस इमारती गुफ़ाकी छतरीकी छायामें भी सूरजकी आँस बढ़ जानेकी वजहसे उनका मुँह कुछ तमतमा आया है और पसीनेकी बूंदें झलक आई हैं । फिर भी वह उसी धैर्य और उदारताके साथ मेरी और मेरे इस लेखकी प्रतीक्षा कर रही हैं, जिसका उन्होंने मेरे सम्पर्कके प्रारम्भसे ही मेरे लिए प्रयोग किया है ।

मैं नहीं समझ पाता हूँ कि मिसेज़ चतुर्वेदीने मेरे ऊपर अभी उपदेश देने और लोगोंको राह दिखानेकी इच्छाका अभियोग क्यों लगाया है ।

मैं समझता हूँ मेरी उम्रके उन्नीसवें सालके, और मिसेज चतुर्वेदीसे मेरे परिचयके, पहले मुझ पर यह अभियोग लगाया जाता तो लगाया जा सकता था। मिसेज चतुर्वेदी जानती हैं कि मैं न महात्मा हूँ और न इस जन्ममें महात्मा और उपदेशक होनेका दावा रखता हूँ। जब यह मिस अग्रवाल थीं, तभीसे उनको मेरा पता है। और उन दिनों इन्होंने मेरे साथ जो कोमल, मिठास भरी लेकिन सदैव सुदृढ़ उदारता बरती है, उनकी गहरी छाप मेरे मन पर अमिट है और मेरा अगला जीवन इनके दिये सहारों-का आभारी है।

मैं बहुत दिनों हैरान रहा हूँ कि यह किस मोम और किस फ़ौलादके मिश्रणकी बनी औरत है।

मिस अग्रवालके मिसेज चतुर्वेदी बननेमें मेरा जो हाथ रहा है उसके लिए मेरे मित्र मि. चतुर्वेदी मेरे एहसानमन्द हैं। मैं समझता हूँ कि आपको भी, जो इन पंक्तियोंको पढ़ रहे हैं, मिसेज चतुर्वेदीकी इतनी चर्चाके लिए मेरा कुछ एहसानमन्द होना चाहिए और अपने पिछले वादेसे मुकर कर, इस लेखमें मुझे मिसेज चतुर्वेदीके आक्षेपोंकी वजहसे जो, विषय-परिवर्तन करना पड़ा है, उसके लिए मुझे—मेरी न सही तो मिसेज चतुर्वेदीकी खातिर क्षमा कर देना चाहिए।

मेरे साधन ये हैं !

पिछलेसे पहले लेखमें किये हुए वादेके अनुसार मैं अब उन साधनों की बात कहूँगा जो मेरे पास और हरएक आदमीके पास मौजूद हैं और जिनके जरिये अभीष्ट चीजें प्राप्त की जा सकती हैं।

उन साधनोंमें से जिनको मैंने अधिक कारआमद पाया है उनकी सूची इस प्रकार है : १-हाथ, २-पैर, ३-आँख, ४-कान, ५ जबान, ६-तन्दुरुस्ती यानी शरीरसे यथासम्भव ठीक काम लेनेकी योग्यता, ७-भावनाएँ, ८-विचार, ९-आदमी यानी लोग, १०-पुस्तकें।

मेरी यह सूची सम्भव है, कुछ ढीले तौर पर बनी हो, क्योंकि इसमें पेटका, जो कि जिन्दगीके लिए हाथसे कहीं अधिक महत्त्वकी चीज है और आत्माका, जो कि विचारोंसे भी कहीं ऊँची चीज है, नाम नहीं है; फिर भी मेरे कामोंमें उपयोगिताके लिहाजसे मेरे सबसे अधिक कारआमद साधनों की सूची यही है। आपकी और हर आदमीकी ऐसी सूचीमें, नामोंमें और चीजोंकी संख्याओंमें कुछ हेर-फेर भी हो सकता है।

"आपकी यह सूची बहुत दिलचस्प और सार्थक जान पड़ती है, लेकिन इसमें जो आपने पुस्तकोंका नाम रक्खा है वह एक बहुत हल्की-सी चीज जान पड़ती है। पुस्तकें तो आखिर कुछ ऊपरी, मोटी-मोटी जानकारी प्राप्त करनेका एक ऊपरी साधन हैं। अधिक पुस्तकें पढ़नेसे मनुष्य कभी सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता, बल्कि उनसे उसमें विघ्न ही पड़ता है।" मेरे एक मित्रकी राय है।

"आपके ये दसों साधन नहीं, बल्कि आपकी असली अभीष्ट-प्राप्ति में बाधक हैं, भाई जी।" मेरे एक दूसरे मित्रका, जो हर शनिवारको देहली में एक वेदान्ती संन्यासीजीके इन्स्टीट्यूट में योगाभ्यास सीखने जाते हैं, कहना है।

लेकिन मेरी जो सूनी है, वही है । इन दसों साधनोंको अगर मैं महत्त्व की दृष्टिसे इस तरह तरतीब दूँ कि अधिक महत्त्वपूर्ण साधन पहले और उससे उतरके बादमें लिखा जाय तो उनका क्रम सम्भवतः इस प्रकार होगा ।

१-विचार, २-भावनाएँ, ३-तन्दुरुस्ती, ४-कान, ५-आँख, ६-आदमी, ७-पुस्तकें, ८-जबान, ९-पैर, १०-हाथ ।

आपके, और आमतौर पर हर आदमीके पास ये दसों साधन मौजूद होते हैं, लेकिन लोग आमतौरपर इन साधनोंकी तरफ़ जितना चाहिए, ध्यान नहीं देते और उनसे पूरा काम नहीं लेते ।

आप लेते हैं ?

आपकी समझके भीतर, आपके फ़ायदेके लिए जो-जो काम आपके हाथ कर सकते हैं, जो-जो चीज ले सकते हैं क्या उन्हें आप अपने हाथोंसे करते ह और लेते हैं ?

क्या आप जानते हैं कि आपके हाथोंके स्पर्शसे, उनकी राह, आपके दिलकी और दिलके भीतरकी बिजलियाँ बहकर किसी-किसी मौक़े पर किसीको जला भी सकती हैं और किसीको जिला भी सकती हैं ?

आपके पैर आपके फ़ायदेकी जिस-जिस जगह आपको ले जा सकते हैं, क्या वहाँ आप मुस्तैदीके साथ पहुँच जाते हैं ?

अपने लाभके लिए जब जो कुछ आप अच्छी-से-अच्छी बात कह सकते हैं, मुस्तैदी और सावधानीके साथ कहते हैं ?

क्या आप जानते हैं कि आपकी जबान दूसरोंपर कितने बड़े-बड़े घाव कर सकती है और कितने बड़े-बड़े घावोंका इलाज भी कर सकती है ? आँख और कानकी राहों जो बातें आपके दिल और दिमाग़की किन्हीं कोठरियोंमें जमा हो जानी चाहिएँ वे कभी जबानकी राह बाहर तो नहीं निकल जातीं ? क्या आप जानते हैं कि जबानका काम पेटकी बातको बाहर निकालनेके साथ-साथ किसी-किसी बातको भीतर दबाना भी होता है ? क्या आपको मालूम है कि आपकी जबान निष्पाप भावसे केवल असाव-

धानी-वश कुछ ऐसे निरपराध पाप नहीं कर बैठती, दूसरोंको ऐसे गहरे पानीमें नहीं डुबा देती, जैसे कि कोई कोई लोग साधारण चर्चा या गपशप के नामपर आदमियोंको डुबा बैठते हैं ?

आपकी पहुँच और जानकारीके भीतर जो-जो अच्छी पुस्तकें हैं क्या उन्हें आप ध्यानपूर्वक पढ़ते और उनसे लाभ उठाते हैं ? आपको मालूम है कि बड़े-से-बड़े रहस्यकी बात जो कि एक ज्ञानी-से-ज्ञानी महापुरुष इन्सानी कानोंमें कह सकता है, मीठे-से-मीठे प्यारकी बात जो कि एक प्रेमका उपासक अपने उपास्यके मुखसे सुन सकता है, ऊँचे से ऊँचे विज्ञान, पुराने से पुराने इतिहास, और दूर-से-दूर भविष्यकी बातें जिन्हें आदमीका मस्तिष्क सुन-कर कुछ समझ सकता है, पुस्तकोंमें मौजूद हैं ? आपको मालूम है कि ऐसी पुस्तकें कागजों, पत्तों, पत्थरों और धातुओंके पत्रोंपर दुनियाकी ज्ञात और भूली हुई भाषाओंमें लिखी हुई मौजूद हैं ? और उनकी लाइब्रेरियाँ कहीं-कहीं पहाड़ोंकी गुफाओंमें धरतीके भीतर सुरक्षित और सुव्यवस्थित मौजूद हैं, और उनमें किसी भी देशके डाक-विभागकी रत्ती-भर भी पहुँच न होने पर भी इस बीसवीं सदीकी भी कोई-कोई खूबसूरत गेटअपदार किताबें पहुँच जाती हैं ? आपको पता है कि भारतके स्वामी दयानन्दने और रूसकी किसी फौजी महिलाने और दर्जनों दुनियाके जाँबाज़ घुमक्कड़ों ने इस तरहकी किताबों और लाइब्रेरियोंकी कहीं-कहीं गवाही दी है ?

क्या आप किसी आदमीको जानते हैं ? यह शायद एक हास्यास्पद और बे सिर-पैरका प्रश्न है। तो फिर क्या आप जिन्हें जानते हैं उनकी भलाइयों और बुराइयों, दोस्तियों और दुश्मनियोंको ठीक-ठीक समझते हैं ? क्या आप उस आदमी या औरतको जानते हैं जिसके दिलमें आपके लिए सबसे अधिक जगह है ? क्या ऐसा कोई व्यक्ति आपको मिला है ? या आपको ऐसेकी तलाश है ? क्या आपको किसी ऐसे आदमीका पता है जो आपकी बड़ी-से-बड़ी गिरावटको समझ कर हमेशा आपसे सहानुभूति रख सकता हो ? अपने मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियोंके सहयोग और विरोधकी, उनकी समझदारी और नासमझी और ग़लतफ़हमीकी सीमाओं

को क्या आप समझते हैं ? आदमीकी नीची-से-नीची हालत और ऊँची-से ऊँची हैसियतका आपको कितना कुछ अनुमान है ? सबसे ऊँचे आदमीकी कल्पना अगर आपके मनमें कुछ है तो वह क्या है ? किसी हिसाबसे आप आदमियोंको कुछ निश्चित दर्जोंमें बाँट सकते हैं ? क्या आपको उन ऊँचे दर्जे के कुछ आदमियोंका पता है जो आपकी मित्रता और सहयोग पाने और अपनी शक्तिभर आपकी सेवा और सम्मान करनेके लिए तैयार बैठे हैं और जिन तक आपकी पहुँच दूरका रास्ता नहीं है और जो आपकी और आपकी मित्रताकी क़ीमतको समझते हैं ? क्या आप जानते हैं कि आदमी आदमी का कौन है ?

क्या आप अपनी आँखसे जब जो-जो कुछ देखना चाहिए मुस्तैदीके साथ देखते हैं ? आँखके कामको कभी आप कानके ऊपर टालकर ही तो नहीं रह जाते?—जो निश्चय या फ़ैसला किसी बातको आँखसे देखकर करना चाहिए उसे सिर्फ़ कानसे सुन लेने पर ही तो नहीं कर डालते ? सामने आये हुए आदमीको ग़ौरकी निगाहसे देखकर उसे आप जितना समझ सकते हैं उसमें लापरवाही तो नहीं करते ? आँखोंकी असावधानीसे आपके पास आई हुई पुस्तकों, चिट्ठियों और व्यक्तियोंमें कोई बात ऐसी छूट तो नहीं जाती जो आपके मतलब की हो ? आपकी आँखोंकी भूल या अल्हड़पनसे कभी कोई व्यक्ति कुछ दूर ऐसे ग़लत रास्ते पर तो नहीं पड़ जाता, जहाँ पहुँच कर उसे भी कष्ट हो और आपको भी बुरा लगे ? क्या आप जानते हैं कि आपकी आँखोंकी निगाह कितनी तरहकी है और वह कितनी और तरहोंकी हो सकती है और वह किस हद तक क्या-क्या कर सकती है ? क्या आप जानते हैं कि इन आँखोंके बिना भी आप दुनियाके रूपोंको किस हद तक देख सकते हैं ?

अपने कानोंसे क्या आप पूरा और ठीक काम लेते हैं ? कानोंके काम को कभी आप आँखों पर ही तो टालकर नहीं रह जाते ? किसीको कुछ करते देख लेने पर, उसकी बात सुन लेनेके बाद जो निश्चय या फ़ैसला आपको करना चाहिए उसे सिर्फ़ आँखसे देखकर ही तो आप नहीं कर डालते ?

दूसरोंकी जो-जो कुछ आप अपने समय और समाईके भीतर सुन सकते हैं उसे सुननेसे इनकार या आलस तो नहीं करते ? आप अपने कानों पर अधिक या अनुचित शोरगुलका दबाव तो नहीं डालते ? आप दोपहर वाले रेडियो-प्रोग्रामकी या किसी और संगीतकी कुछ क़द्र कर लेते हैं ? क्या आप जानते हैं कि आपके कान मनुष्यकी बोलीके बाहर निर्जन जगहोंमें भी कभी-कभी कुछ सार्थक बातें सुन सकते हैं ?

अपनी तन्दुरुस्तीसे क्या आप पूरा-पूरा काम लेते हैं और उसकी पूरी परवाह करते हैं ? ऐसा तो नहीं होता कि जितना ध्यान और जितना ख़र्च आप उस पर करते हैं, उतना काम उससे न लेते हों ? आप तन्दुरुस्ती के उपयोगों और दुरुपयोगोंका भेद समझते हैं ? आप अपनी ज़बानको इतना सुख या पैरोंको इतना आराम तो नहीं दे देते कि उसका बदला आपके पेटको चुकाना पड़ता हो ? क्या आप जानते हैं कि अपनी तन्दुरुस्ती के बल पर आप दूसरोंका बोझ बटा कर और दूसरों पर बोझ लाद कर किस-किस तरह की कमाई कितनी क़ीमत तक की, अपने लिए कर सकते हैं ?

और आपकी भावनाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ (अगर आपमें कोई हों तो) दिलकी लगावटें, नफ़रतें, खुशियाँ, बेचैनियाँ, हसरतें, उम्मीदें ये सब आप जानते हैं, क्या हैं ? ये कहाँसे आती हैं, कहाँ जाती हैं, कहाँ रहती हैं, क्या करती हैं और क्या-क्या कर सकती हैं, इनकी औक़ात क्या है, आपके पास ये कितनी हैं—इन बातोंका आपको पता है ? क्या आप जानते हैं कि आपके पास ये वो ताक़तें हैं जिनसे आप चाहें तो दुनियाको जीत सकते हैं, पहाड़ोंको खिसका सकते हैं, और नागनियों और शेरनियोंको चूम सकते हैं ? आपने कभी इन पर ध्यान दिया है ? क्या आप जानते हैं कि आप इनके बिना किसी भी दिन, किसी भी घंटे, किसी भी पल कोई काम नहीं कर सकते और इन्हींकी बदौलत आप इकन्नियोंमें हीरे ख़रीद लेते हैं और इकन्नियोंमें हीरे बेचनेके लिए मजबूर भी हो जाते हैं ? आपकी दुनिया के इस ज़बरदस्त जादूका, जिससे जानते हुए या अनजानमें, थोड़ा या बहुत काम आप हर समय लेते रहते हैं, पता है ? क्या आप जानते हैं कि जो कुछ

आप इन साधनोंसे कमा सकते हैं, आपका धन-दौलतसे कमाया हुआ माल उसका पासंग भी नहीं हो सकता ? इन जादुओंके संबंधमें क्या आपको मालूम है कि जाननेवालोंने कितनी किताबें हमारी आपकी जानकारीके लिए लिख रक्खी हैं ?

और भावनासे भी आगे, आपके मनमें विचार नामकी जो चीज उठा करती है उसे भी क्या आप समझते हैं ? भावना और विचारका अन्तर क्या आपको मालूम है ? क्या आप जानते हैं कि तीर चलाने वालेकी ताक़त और दोस्तोंको बचाकर निशाने पर ही तीर चलानेकी समझ और योग्यतामें क्या अन्तर है ? क्या आप जानते हैं कि भावनाके तीरोंको पैना करनेवाली और उनकी रोक-थाम रख कर, दुरुपयोग और आत्मघात-से बचा कर, उन्हें सदुपयोगमें लाने वाली अगर कोई शक्ति आपके पास है तो वह विचार ही है ? क्या आप जानते हैं कि भावनाओंको सुलाकर, उसके तीरोंको तरकसमें लिटाकर भी यह विचार नामकी चीज आपको अपने लक्ष्यका पता देकर आगे बढ़ा सकती है और दुनियाके बाहर-भीतर असली सैर करा सकती है ? क्या आप जानते हैं कि ज्ञान और पूरी समझ-दारी और पूरे सुखकी कुंजी इसीके हाथमें है ?

जो-जो कुछ भी मैं पाना चाहूँ उसकी प्राप्तिके ऊपर कहे दस खास साधन मेरे पास हैं और इन दसोंमें 'विचार' का सबसे ऊँचा स्थान, कम-से-कम मेरे लिए है।

और क्या मैं अपने इन दसों साधनोंसे ठीक काम लेता हूँ ?

यह मेरे लिए अभी असम्भव है, मैं ऐसा करनेका अपनी योग्यता और समझ और सावधानी भर अधिक-से-अधिक प्रयत्न अवश्य करता हूँ।

अपने पसंदके ज्ञानकी प्राप्तिके सिलसिलेमें मैंने उसके तीसरे विभाग—वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए मेरे पास मौजूद साधनोंकी छानबीन और जान-कारी वाले विभाग—को पहले लिया है।

मेरा अनुमान है कि अगले दो-तीन जन्मोंम म इस विभागकी पूरी जानकारी पा लूँगा। तब ज्ञानके बाक़ी पाँच विभागोंकी छान-बीन मेरे लिए आसान हो जायगी।

मैंने इस जन्ममें अ से लेकर इन्ट्रन्स तकके बारह दर्जे, बल्कि एफ. ए. का भी एक यानी पूरे तेरह दर्जे पास किये हैं। इसलिए हर जानकारीको दर्जोंके हिसाबमें ही प्राप्त करनेकी मेरी आदत पड़ गई है।

जब म तीसरे दर्जेमें ही था तभी मुझे इन्ट्रन्स यानी दसवें दर्जेका पता लग गया था और मुझे निश्चय हो गया था कि मैं दसवाँ दर्जा जरूर पास करूँगा। और चौथे दर्जेमें पहुँचने पर तो मैंने दसवें दर्जेकी एक किताब भी अपने स्कूलके एक बड़े विद्यार्थीके पाससे लेकर देख ली थी और उस किताबकी एक कहानी भी मैंने उससे पढ़वाकर सुन ली थी और वह कहानी पूरी तरह समझमें न आने पर भी मुझे बहुत अच्छी लगी थी।

निस्संदेह उन दिनों मैं एक बहुत तेज लड़का था।

और क्या आप अपने बचपनके पढ़ाईके दिनोंमें इतने तेज नहीं थे ?

निस्संदेह आप इतने तेज तो जरूर रहे होंगे कि आपने तीसरे ही दर्जेमें दसवें दर्जेका नाम सुन लिया होगा।

और उस दर्जे तक पहुँचनेमें आपको पूरा विश्वास भी हो गया होगा।

बल्कि दसवें दर्जेको पास करनेकी नीयतसे ही आप तीसरे दर्जेमें भर्ती हुए होंगे।

तो फिर क्या अब आप उतने तेज नहीं रह गये हैं ?

अपने जीवनमें—रोजगार-व्यापारमें, नौकरीमें, हुनर-कारीगरीमें, लोगोंके साथ व्यवहारमें, सुखमें, दु:खमें, परदेशमें, परिवारमें हर कहीं आप कुछ न कुछ अनुभव प्राप्त कर रहे हैं, कुछ कामकी बातें सीख रहे हैं।

क्या यह सम्भव नहीं कि ये पाठ जो आप इस तरह सीख रहे हैं इनके भी कुछ सिलसिलेवार दर्जे, इम्तिहान, नतीजे, सनदें और उन सनदोंके सहारे किसी सरकार और समाजमें मिलने वाले ओहदे और लाइसेन्स और सम्मान भी होते हों ?

मुझे पता लगा है कि यह ऐसा ही है और इसीलिए मैं इस बातकी छान-बीनमें लगा हूँ।

मेरे हिसाबसे मैं, आप और हर एक आदमी प्रेम और ज्ञानके कुछ न कुछ पाठ पढ़ रहा है।

मोटे तौर पर जहाँ तक मैं समझता हूँ प्रेमके बाद ज्ञानका दर्जा आता है, लेकिन इन दोनों दर्जोंके पाठ आपसमे कुछ ऐसे गुंथे हुए हैं कि यह दिखाना बहुत कठिन है कि कौन पहले है और कौन बादमें। फिर भी मैं कह रहा हूँ कि पहले आदमी प्रेम सीखता है फिर ज्ञान।

और ज्ञानके बाद ?

ज्ञानके बाद तो फिर शायद मजा ही मजा है।

और उसके पहले ?

उसके पहल भी शुरूसे ही प्रेमके साथ और ज्ञानके साथ, इस मजे की —इसे आनन्द कह लीजिए—शुरुआत हो जाती है। व्यवहारमें समझ लीजिए, प्रम, ज्ञान, आनन्द तीनों आपसमें हर कहीं गुथी हुई चीजें हैं। इस लेखमें मैंने, अपने विभाजनके हिसाबसे ज्ञानके तीसरे विभाग—उन साधनोंकी, जिनके द्वारा चीजें प्राप्त की जाती हैं, कुछ खोज-पड़तालकी चर्चा मुख्य रूपमें की हैं।

इसे आप याद रखेंगे ?

●

मेरे अट्ठाईस

मैंने अपने पास मौजूद साधनोंके सम्बन्धमें अपनी खोजको काफी आगे बढ़ाया है और उसे एक तरफा-ही नहीं रहने दिया है।

जहाँ एक तरफ़ मैंने यह जाननेकी कोशिश की है कि इन साधनोंसे मुझे क्या-क्या मिल सकता है वहाँ दूसरी तरफ़ मैंने यह भी खोज की है कि इन साधनोंको मुझसे क्या-क्या मिलना चाहिए—दूसरे शब्दोंमें, इन साधनोंके लिए मुझे किस-किस चीजकी जरूरत है।

हालाँकि यह मेरी खोजका कोई विशेष आवश्यक पहलू नहीं है, फिर भी शायद आपकी कुछ दिलचस्पीका हो इसलिए यहाँ नमूनेके तौर पर कुछ आवश्यक चीजोंके नाम लिखता हूँ।

१—हाथोंके लिए—साबुन या मिट्टी, सर्दियोंमें दस्ताने, नाखून काटनेकी कैंची।

२—पैरोंके लिए—जूते, नाखून काटनेकी कैंची, सरदियोंमें मोजे।

३—जबानके लिए—जीभी, समय समय पर कुछ स्वादिष्ट खानपान, शुद्ध, स्पष्ट एवं अलग-अलग स्वरोंमें बात कह सकनेका अभ्यास, यथावसर चुप रहनेका अभ्यास।

४—पुस्तकोंके लिए—अल्मारी, डस्ट कवर।

५—आदमियोंके लिए—अपने भीतर उनके लिए कुछ आकर्षण, उपयोगिता, अच्छा स्वभाव, कुछ सेवा कर सकनेकी समाई।

६—आँखोंके लिए—कभी-कभी त्रिफलाके छींटे, सुन्दर, रमणीक और तरावट पहुँचाने वाले दृश्य।

७—कानोंके लिए—कभी-कभी मीठा-कोमल संगीत; कर्कश शब्दों, शोरगुल और लू-लपटसे बचाव।

८—तन्दुरुस्तीके लिए—पुष्टिकर स्वादिष्ट भोजन, आरामदेह कपड़े, मकान और आवश्यकता पड़ने पर औषधि-उपचार।

९—भावनाके लिए—प्रेम, आदर-सम्मान।

१०—विचारोंके लिए—समझदारी, हर सामने या काम में आनेवाली चीज़ या बातकी उपयोगगिता, क़ीमत और असलियतकी जानकारी।

हालाँकि साबुन, मिट्टीसे लेकर हर चीज़की असलियतकी जानकारी तक जो अट्ठाईस चीज़ोंकी सूची मैंने ऊपर लिखी है, वह मेरी खोजके किसी विशेष आवश्यक पहलूका नतीजा नहीं है, फिर भी इस सूचीमें मुझे एक बहुत बड़ी कामकी बात मिल जाती है।

इस सूचीमें मुझे ज्ञानके पहले विभाग —मुझे किस-किस चीज़की ज़रूरत है, इस प्रश्नकी छानबीन का कुछ अस्थाई, काम चलाऊ मसाला मिल जाता है। भले ही ये चीज़ें मेरे लक्ष्य या अभीष्ट आवश्यकताकी चीज़ें न हों, फिर भी ये मेरी आवश्यकताओंके लिए आवश्यक चीज़ें तो हैं ही।

और, आप देख रहे हैं कि इस खोजसे मुझे अपनी छानबीनके एक और, यानी तीसरेके साथ-साथ पहले विभागमें भी कुछ 'पहुँच' मिल गई है।

निस्संदेह मेरी सूचीकी उन अट्ठाईस चीज़ोंमें कुछ—जैसे मिट्टी, साबुन आदि—बहुत मामूली हैं; और कुछ—जैसे प्रेम, सम्मान, स्वभाव, समझदारी आदि-बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

और अपने उन दसों साधनोंको बनाये रखने और उनसे ठीकसे काम लेनेके लिए मुझे जो इन अट्ठाईस चीज़ोंकी ज़रूरत है उनमेंसे मेरा खास ध्यान इन पाँच चीज़ों पर है:—

१. अच्छा स्वभाव

२. दूसरोंकी कुछ सेवा कर सकने की समाई।

३. प्रेम।

४. आदर-सम्मान।

५. समझदारी।

और जबतक मुझे अपनी असली आवश्यकता या अभीष्ट का—

ईश्वर, मुक्ति, स्वर्ग, योग-बल, स्मशान भूमि या जो कुछ भी वह हो—पता न लग जाय और उसकी पूरी समझ न आ जाय तबतकके लिए मोटे तौर पर ये पांच चीजें ही मेरी आवश्यक चीजें हैं और मेरी अभीष्ट हैं। और फ़िलहाल अभीष्टके दर्जे पर रखनेके लिए ये कोई बहुत ओछी चीजें भी नहीं हैं। इसपर एक आक्षेप है :

"आपका उद्देश्य ऊँचा जान पड़ता है और ज्ञान और धर्मकी ओर आप का रुझान भी मालूम होता है। लेकिन आपका यह छानबीन और खोज-पड़ताल वाला ढंग बहुत छिछली-सी, बच्चोंकी सी बात है। कहीं ज्ञान और धर्मकी खोज इस तरह की जाती है? हर बातको अपने दिमाग़से सोचना, ज्ञान और धर्मके सम्बन्धमें अपने मनमाने विभाग और प्रश्नावलियाँ बनाना, सूचियाँ बनाना और उनमें काट-छांट करना—यह तो ऐसा ही है जैसा कि किसी चूरन-चटनीके लिए मसालोंकी लिस्टें बनाना और उनमें काट-छाँट करके उसे स्वादिष्ट बनानेके लिए प्रयोग करना। लेकिन ज्ञान और धर्म तो और ही चीजें हैं; इनका रास्ता दिमाग़से सोच समझ कर हम और आप नहीं निकाल सकते। इनके लिए अधिक ठीक रास्ते तो हमारे ऋषियों-महात्माओंने अपने ऊँचे आत्म-ज्ञानसे देखकर निश्चित कर रक्खे हैं और वे हमारे धर्मशास्त्रोंमें मौजूद हैं। आपने ज्ञानके जो विभाग करके हरेकके लिए जो एक एक प्रश्न निश्चित किया है वह सब आपने किसी शास्त्रसे लिया है, या किसी महापुरुषने आपको बताया है? या आप अपने आपको इतना योग्य समझते हैं कि इस तरह के विभाग और रास्ते अपने और दूसरोंके लिए निकाल सकें, या इसके लिए किसी खास योग्यताकी ज़रूरत नहीं समझते? या आपकी राय यह है कि हर-एक आदमी अपने लिए ज्ञानके रास्ते निकाल कर उनसे लाभ उठा सकता है? मेरा अपना विचार तो यह है कि ज्ञानके लिए शास्त्रोंके अध्ययन, पहुँचे हुए गुरुकी खोज और उसकी शरण और उसकी आज्ञानुसार योग-साधनकी आवश्यकता है और यह आपकी जैसी चलती हुई और चुटकुलों वाली बातचीतका विषय नहीं है।"

ऊपर लिखा आक्षेप मेरे जिन आदरणीय मित्रका है उन्होंने मुझे तीन साल तक प्राइमरी स्कूल में अरिथमेटिक पढ़ाई है और उनके बाद दूसरे मास्टरोंसे मैंने लगातार दसवें दर्जे तक अरिथमेटिक पढ़ी है और ग्यारहवें दर्जेमें मैंने थोड़ीसी लॉजिक (तर्कशास्त्र) भी पढ़ी है।

और मैं मानता हूँ कि अरिथमेटिक और लॉजिक कोई बुरी या ग़लत चीजें नहीं हैं।

मेरी यह धारणा ग़लत तो नहीं है ?

इसीलिए मैं हर तरहके ज्ञानोपार्जन और जानकारी और छानबीनको, अगर मुमकिन होता है, अरिथमेटिक और लॉजिकके ढंग पर समझने और साबित करनेकी कोशिश करता हूँ।

मेरे इन आदरणीय मित्रका कहना है कि ईश्वरने मनुष्यको अलग-अलग दर्जोंका ज्ञान लेनेके लिए अलग-अलग साधन दिये हैं—संसारकी स्थूल वस्तुओंका ज्ञान लेनेके लिए दिमाग़, सूक्ष्म वस्तुओंका ज्ञान लेनेके लिए बुद्धि और परलोकका ज्ञान लेनेके लिए आत्मा।

मुझे इनके कथनमें कोई एतराज़ नहीं है और मैंने इसे यों समझा है कि जैसे रेखागणित (ज्योमेटरी) के अनुसार एक नापका ज्ञान होनेसे सिर्फ़ लम्बाई रखने वाली शक्लों यानी लकीरोंका, दो नापका ज्ञान होनेपर लम्बाई के साथ-साथ चौड़ाई भी रखनेवाली शक्लों जैसे कमरों या मैदानोंके धरातलका, और तीन नापोंका ज्ञान होनेपर लम्बाई और चौड़ाईके साथ-साथ ऊँचाई या मोटाई रखने वाली शक्लों जैसे लकड़ीके तख्तों या सन्दूकोंका ज्ञान हो सकता है; या अरिथमेटिक के हिसाबसे जैसे इकाईके स्थानपर लिखनेसे किसी अंकका जो मान होता है, दहाईके स्थानपर उसी अंकको लिख देनेसे उसका मान बिल्कुल बदल जाता है, [दस गुना हो जाता है]और सैकड़ेके स्थानपर उसे लिख देनेसे उसका मान और भी बदल जाता है [सौ गुना हो जाता है] और जिसे दहाई और सैकड़ेके स्थानोंका ज्ञान नहीं है वह उन स्थानोंपर लिखे हुए अंकोंका अर्थ हरगिज़ नहीं समझ सकता; उसी तरह यह भी बिल्कुल सम्भव है कि दिमाग़से सूक्ष्म वस्तुओंका और

बुद्धिसे परमात्मा का और परमात्माके देशका ज्ञान न हो सकता हो और ये चीजें हमारे दिमाग़की समझके बाहर होते हुए भी कहीं न कहीं मौजूद हों।

और जिस तरह आठवें दर्जेकी अरिथमेटिकमें दशमलवके नियम सीख लेनेपर दूसरे दर्जेके सीखे हुए गुणा भागके नियम ग़लत नहीं हो जाते और दशमलवकी असलियतको गुणा भागके नियमोंसे किसी तरह का धक्का पहुँचनेका डर नहीं रहता, उसी तरह मेरा पक्का विश्वास है कि दिमाग़ी छानबीनसे ज्ञान-भक्ति, प्रेम, ईश्वर, आत्मा, योगबल वग़ैरह चीजों को कम से कम कोई धक्का नहीं पहुँच सकता। दिमाग़ उन्हें ग़लत या नामौजूद नहीं साबित कर सकता और अगर उन चीजों में कुछ सचाई है तो दिमाग़ से भी उनकी कुछ न कुछ टोह—दसवें सौवें हज़ारहवें हिस्सेमें ही सही—मिल ही सकती है।

तो फिर अगर—जब तक मेरे पास दिमाग़से बड़ी कोई चीज या प्रज्ञा छानबीन करनेके लिए नहीं है तब तक अगर मैं दिमाग़से ही हर चीजकी छानबीन करता हूँ; ज्ञान और प्रेम और धर्मकी अपनी समझ और आवश्यकता के अनुसार विभाग और परिभाषाएँ स्थिर करता हूँ, तो क्या बुरा करता हूँ ? अगर दिमाग़ भी ईश्वरने ही दिया है और वह ज्ञान और धर्मके मामलों में भी कुछ सोच सकता है—और आपके सामने ही मैं इन बातोंको दिमाग़से सोच ही रहा हूँ—तो ज़रूर कुछ-न-कुछ सचाई इससे भी निकल आयेगी।

अपने कामकी जो-जो बात आप अपने दिमाग़से सोच सकते हैं उसे दिमाग़से न सोचना एक बहुत बड़ी लापरवाही और नादानी और घाटेकी बात है।

जो लोग ज्ञान और धर्मको शास्त्रोंके अध्ययन, गुरुओंकी दीक्षा और योगाभ्यासके द्वारा प्राप्त कर रहे हैं उनके लिए मैं ये लेख नहीं लिख रहा हूँ।

ये लेख तो मैं क़ाशीबाबू जिनकी संगमरमरकी बड़ी दूकान है, और हरविलासजी जिनकी कपड़े और गल्लेकी आढ़त है, और बंसलजी जिनके

संगमरमरके कारखाने हैं और जिन्हें मैंने अपनी पहली पुस्तक समर्पित की है, और शंकरलालजी जिनकी कपड़े और कचौड़ियोंकी मशहूर दुकानें होते हुए भी चित्रकलामें अच्छी महारत हो गई है, और वकील साहब हीरालालजी जो वकालतके साथ-साथ दूसरेभी कारबारोंमें दखल रखते हैं, और ताराचन्द जी जो कोयलेके व्यापारी होते हुए भी साफ़ कपड़े पहनते हैं, और श्यामसरन जी जो अपने दिलकी चुलबुली मिठासोंको सरलतापूर्वक क़लमके रास्ते कागजपर उतार देते हैं और कुँवर दरबारीलाल जैन जो अपने लोहेके कार-बारके साथ-साथ कानूनी दरबारमें भी एक बाइज्जत दखल रखते हैं, और रामगोपालजी जो कि शायद योगाभ्यासकी क़द्रको हम सबसे अधिक समझते हैं; और अपने इन मित्रोंके अलावा दूसरे दर्जनों दोस्तोंके लिए, और उन सैकड़ों परिचितों-अपरिचितों के लिए जो कि आगे चलकर मेरे परिचित और मित्र बनेंगे—उन सबके दिलबहलाव, बातचीत, बहस-मुबाहसे, समय कटाव, दिलदिमागके बढ़ाव और कुछ-न-कुछ लाभके लिए मैं ये लेख लिख रहा हूँ। जिनके लिए मैं ये लेख लिख रहा हूँ उन्हें शास्त्रके अध्ययन, गुरुओं के सत्संग और योगाभ्याससे कोई विरोध नहीं है, बल्कि वे इन्हें अच्छी चीजें समझते हैं और उनमेंसे किसी-किसीके दिलमें तो गुरु और भगवान्के लिए बहुत गहरी भक्ति और तड़प भी मौजूद है। लेकिन थोड़ी-सी रुकावट यह है कि उनके पास दूसरे जरूरी कारबारकी वजहसे इन बातोंके लिए फुर्सत नहीं बचती। जिनके लिए मैं ये लेख लिख रहा हूँ उनकी तबीयतें मेरी तबीयतसे बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। किताबोंमें लिखे हरेक सूरमा, भक्त, देशभक्त और ईमानदार प्रेमी के लिए आदर सहानुभुति, और हरेक दुष्ट और विरोधी के लिए नफ़रत उनके दिलोंमें जाग उठती है। अच्छी मनोरंजक पुस्तकों को पढ़नेके लिए वे कभी थोड़ा समय निकाल लेते हैं। जिन्दा-दिली, सुन्दरता और स्वस्थताकी क़दर और जिम्मेदारीका लिहाज और अपने आगे पीछेका कुछ ध्यान उनके दिलोंमें है। आपसी मेल-मुहब्बत और संग साथकी सैर-तफ़रीहमें उनकी मेरी ही जैसी दिलचस्पी है। अलबत्ता एक बातमें मैं

उनसे कुछ आगे बढ़ा हूँ और उनसे अधिक भाग्यवान हूँ। वह यह कि मेरे पास उनके मुक़ाबले फुर्सत कुछ ज्यादा है और दुनियाके कारोबारका बोझ कुछ कम है।

इसलिए मेरी भी यह जिम्मेदारी है कि मैं अपनी इस ज्यादा फुर्सतसे कुछ नतीजे निकालकर उनमें अपने इन मित्रोंका भी हिस्सा बटाऊँ।

ऊपर मैंने जिन मित्रोंके नाम लिखे हैं वे सब आगरेकी स्थायी मित्र समितिके सदस्योंमें से हैं और सौ-सौ और दो-दो सौ रुपये देकर उस समितिके सदस्य बने हैं। उन्हें सभा-सोसायटीकी क़दर है। महीनेमें एक या दो बार ये सब तीन घण्टे के लिए इकट्ठे होनेका समय निकाल सकते हैं। और हर अच्छे विषय पर बात-चीत करनेके लिए तैयार हो सकते हैं और बात-चीत कर सकते हैं और उस बात-चीतसे अपने और अपने मित्रोंके लिए नतीजे भी निकाल सकते हैं और उन्हें सुभीतेके मुताबिक अमलमें भी ला सकते हैं। और अगर इस स्थायी मित्र समितिके प्रेसिडेण्ट हीरालालजी अपनी इस हैसियत पर एक बार भी पूरी निगाह डाल लें और इसके सैक्रेटरी काशीबाबू अपनी बादशाहों वाली आलसकी आदत छोड़ दें तो इस बीसवीं सदीके भीतर ही यह समिति अपना काम शुरू कर सकती है, वरना समिति को उस समय तक इन्तज़ार करना पड़ेगा जबतक मेरा प्रेसिडेण्ट या सैक्रेटरी होनेका नम्बर न आये। मैं यह कोई हँसीमजाक या छोटी-मोटी संस्थाकी बात नहीं कह रहा हूँ—यह एक गम्भीर और मजबूत चीजकी बात है और आप भी, जो इन पंक्तियों को पढ़ रहे हैं, चाहें तो इस समिति के मेम्बर अभी तक न हों तो अब बन सकते हैं और बिना सौ दो सौ की फ़ीस दिये भी बन सकते हैं।

इस समितिके मेम्बर मुझे अपना कर्ज़दार समझते हैं और अगर वे नहीं समझते तो मैं ही अपने आपको समितिका कर्ज़दार समझता हूँ।

समितिके मेम्बरोंको छोड़कर मैं आगे-आगे ज्ञान, भक्ति, मुक्ति, ईश्वर आदि कोई भी चीज अकेले नहीं पा सकता।

उस कर्जकी अदायगीमे ही मै उनके और उन जैसे दूसरे सबोके लिए ये लेख लिख रहा हूँ और चूकि आमतौर पर उन लोगोको कहानी-उपन्यास जैसी चीजोमे कुछ-न-कुछ दिलचस्पी है इसलिए मै कहानी-उपन्यासके तौर पर ही ये लेख लिख रहा हूँ।

मेरे इन महाजनोमे आप भी आसानीसे ही नाम लिखा सकते है—अगर आपकी शास्त्रोंके अध्ययन, गुरुओके सम्पर्क और योगाभ्यासके साधनमे अभी तक कोई खास पैठ न हो पाई हो।

मेरे उन आक्षेप करने वाले आदरणीय मित्रने भी अब मुझे आज्ञा दे दी है, इसलिए मै अगले लेखमे अपना सिलसिला जारी करूँगा।

बड़ा काम

जहाँ बैठकर मैं ये लेख लिखा करता हूँ उस जगह से करीब तीन सौ फ़ीटकी दूरी पर और सौ फ़ीटकी निचाईपर जमनाके पानीमें कुछ धोबी कपड़े धोया करते हैं। उनमेसे एक धोबीकी तरफ़, जो मेरा परिचित हो गया है, अक्सर मेरा ध्यान खिंच जाया करता है। वह करीब चालीस सालका एक हट्टा-कट्टा आदमी है। बड़ा खुशमिजाज है, सब धोबियोंसे खूब हेल-मेल रखता है। गधेपर लादी भारी हो तो खुद पैदल चलकर ही उसे हांकता है। किसी मालिकका कपड़ा दो दिनसे ज्यादा अपने तन पर नहीं रोकता, और अपनी बीबीको, जोकि पहलीके मर जानेकी वजहसे दूसरी है और बिल्कुल नौजवान और काफ़ी खूबसूरत है, बहुत प्यार करता है और उसपर कभी भी गुस्सा नहीं करता, और कभी-कभी कुछ एकान्त पाकर या ओट करके उसे घाट पर भी, अंगरेजी पढ़े-लिखोंके तरीके पर कान के पास मुंह ले जाकर प्यार भी कर लेता है। पहली बीबीसे उसका एक छोटा बच्चा है, जिसे दोनों जने जान-प्राणकी तरह सँभाल कर रखते है। घाटपर एक बड़ी टोकरीको खड़ी करके उसके सायेमें उस बच्चेको उसकी नई माँ लिटा देती है। और घण्टे-घण्टे बाद उस टोकरीपर पड़े हुए गीले कपड़ेको बदलती रहती है। धोबी कपड़े धोता है और धोबिन धुले कपड़ों की और बच्चेकी सँभाल करती है और वह सिर्फ़ उतनी ही देर कपड़े फींचने पानीमें घुसती है जितनी देरके लिए धोबी अपने बच्चेको खिलाने और मन-बहलाव करनेके लिए बाहर आता है।

इस धोबीसे इसी लेखमें आगे मेरा और आपका काम पड़ना है, इसलिए पहलेही मैंने इसकी चर्चा कर दी है।

इन पंक्तियोंको लिखनेसे करीब एक साल पहलेकी बात है जब कि मैं यहीं बैठा हुआ अपनी पिछली पुस्तकका एक लेख लिख रहा था कि

मि. वी. एक नये सज्जन मि. आर. को लेकर उधर आ निकले और उन्होंने यह कह कर मेरा उनका परिचय कराया कि मि. आर. उनके नये गुरुभाई और गहरे दोस्त हैं। उनका सोने-चाँदीका व्यापार है, ज्ञान और वैराग्य की तरफ उनका बहुत ध्यान है; वह हाल ही में अपनी उस ज्ञान और तेज चाहकी वजहसे मि. वी. के एक स्कूलमें भरती हो गये हैं। उस विषय के प्रोफ़ेसरने मि. आर. की पढ़ाईमें मदद करनेका काम मि. वी. को ही सौंपा है। बातों-बातोंमें मि. वी. ने यह भी बताया कि मि. आर. को अपने धन्धेसे भी वैराग्य हो गया है और वह अब दुकानका काम अपने भाइयोंको सौंपकर कोई दूसरा, अधिक ऊँचा और सात्विक ढंगका काम करना चाहते हैं। रुपया कमानेकी अब उन्हें इच्छा और आवश्यकता नहीं है---वह उनके लिए पहले ही काफ़ी है। चूंकि कुछ काम हरेक आदमी को करना चाहिए, इसलिए वह किसी अच्छे कामको हाथमें लेना चाहते हैं।

"मुझे तो आपसे डाह होता है" मि. आर. ने मुसकराते हुए कहा, "आपका जीवन कितना सुन्दर है! यह पवित्र स्थान, जमुना का किनारा, यहाँ आप स्वच्छन्दताके साथ सोसायटीकी उलझनों और भीड़-भाड़ और शोर-गुलसे अलग होकर स्वाध्याय करते हैं और सुन्दर-सुन्दर लेख लिखते हैं और इसीसे अपनी रोटी भी कमाते हैं। स्वार्थका स्वार्थ और परमार्थका परमार्थ। मै भी ऐसा ही जीवन बिताना चाहता हूँ।"

"मैं इस जीवनमें हिस्सा बटानेके लिए आपका खुशीके साथ स्वागत करता हूँ" मैंने अपनी कापी और पेन्सिल उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा, "आप भी बेशक मेरी ही तरह लेख लिखिये, स्वाध्याय कीजिये और जिस घरमें मैं रहता हूँ उसीमें आकर रहिये भी। उसमें आपके भरके लिए काफ़ी जगह बाक़ी है।"

लेख ही लिखने मुझे आते होते तो फिर क्या बात थी। तब तो शायद आप यहाँ बादमें आते और मैं पहलेसे ही मौजूद होता" मि. आर. ने जवाब दिया।

"यह कोई बड़ी बात नहीं, आप चाहेंगे तो मैं आपको सिखा लूँगा' मैंने कहा।

"लेकिन आप जो इन्हें सोसायटीकी भीड़-भाड़से दूर और स्वच्छन्द समझ रहे हैं सो बिल्कुल ग़लत बात है" मि. बी. ने चलनेके लिए मि. आर. का हाथ पकड़कर उन्हें उठाते हुए कहा, "यहाँ आकर तो यह हज़रत और भी ज्यादा सोसायटीकी भीड़-भाड़ और हलचलोंमें घिरे रहने लगे हैं। आप जानते नहीं, आदमी जितना ही जिन लोगोंकी बात सोचता है उतना ही उन लोगोंके बीचमें रहता है। यहाँ आकर यह अपने दोस्तों और परिचितोंकी क्या, सैकड़ों हजारों अपरिचितोंकी बात सोचने और लिखने लगे हैं। अगर आपकी दिव्य दृष्टि जगी होती तो बीस मिनट पहले आप इस जगह पचास आदमियोंकी शक्लें देख लेते।"

यह कहते-कहते वे दोनों नीचे मैदान तक पहुँच गये थे।

उनके आनेके समय करीब बीस मिनट पहले मैं अपने कुछ ऐसे परिचितोंकी सूची बना रहा था जिनके लिए मेरा उस समयका लेख उपयोगी और रुचिकर हो सकता था।

उसदिनसे करीब दो महीने बाद मि. बी. ने मि. आर. के साथ दोबारा मुझे दर्शन दिये। बीचके इतने दिनोंके समाचार देते हुए मि. बी. ने बताया "चूंकि मि. आर. इस ऊँचे अध्ययनके नये जीवनमें प्रवेश पाने पर पुराना काम छोड़कर कोई अच्छा बड़ा काम हाथमें लेनेके लिए उत्सुक थे, इसलिए इस मामले पर अपने अध्यापकके साथ हम दोनोंने बैठकर काफ़ी विचार किया और अन्तमें यह तय हुआ कि मि. आर. पशु-रक्षाके आन्दोलनमें, जिसमें बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं तकका हाथ था, भाग लें। मि. आर. ने करीब एक महीने इस आन्दोलनके सिलसिलेमें दौरा किया, इसमें इन्हें जनता और राजाओंकी ओरसे सम्मान और सहयोग भी मिला। लेकिन इस एक महीनेकी दौड़-धूपमें ही कार्यकर्ताओंके साथ कुछ अनबनके कारण नका मन इस कामसे फिर गया। अब इन्हें किसी और कामकी तलाश है जिसमें इनका आध्यात्मिक लाभ भी साथ-साथ हो।"

"जिस बातके चुनावमें आपके प्रोफ़ेसर साहबने इतना सहयोग दिया उसके निर्णयमें मुझे उनसे कुछ बेहतर नतीजेकी आशा थी" मैंने मि. वी. और मि. आर.के उन प्रोफ़ेसर साहब पर कुछ कटाक्ष-सा करते हुए कहा ।

"तुम समझते नहीं, उनकी यही शैली है" मि. वी. ने सधे हुए स्वरमें मुझपर एक पैनी-सी निगाह डालते हुए कहा ।

मुझे अपने उस आक्षेपके लिए कुछ लज्जित होना पड़ा ।

"आप भी इनके लिए कोई अच्छा काम सोचिये" मि. वी. ने अपना स्वर बदलते हुए कहा ।

"मैं भला क्या काम बताऊँ ? लेख लिखने इन्हें आते नहीं । यह अगर धोबीका काम करना चाहें तो मैं इन्हें उस आदमीके साथ लगा सकता हूँ" मैंने उसी धोबीकी ओर, जिसकी मैं ऊपर चर्चा कर आया हूँ इशारा करके अपने इस मज़ाककी हँसीको भीतर ही दबाते हुए कहा । "वह मुझे एक बहुत अच्छा आदमी साबित हुआ है और धोबियोंका काम भी मुझे बहुत सतोगुणी मालूम होता है ।"

"आपकी यह दूसरी तजवीज़ कुछ जानदार मालूम पड़ती है" मि. वी. ने पूरी गम्भीरताके साथ कहा, "आज ही मैं इस सुझावपर मि. आर. के साथ विचार करके प्रोफ़ेसर साहबकी इस पर सलाह लूँगा ।"

फिर थोड़ी-सी बातचीतके बाद दोनों चले गये ।

अगले-ही दिन मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब मेरे इन दोनों दोस्तोंने आकर मुझे बताया कि प्रोफ़ेसर साहबने मि. आर. के लिए धोबी वाले कामको बहुत पसन्द किया है । मि. वी. ने कहा :

"मि. आर. ने इस कामको इसलिए स्वीकार कर लिया कि वह बार-बार अपने इरादे नहीं बदलना चाहते, प्रोफ़ेसर साहबको बार-बार इस सोच-विचारकी तकलीफ़ नहीं देना चाहते और अपनी तबीयत पर ज़ोर डालकर चाहते हैं कि आख़िर इस नीच कामसे भी देखें क्या नतीजे निकलते हैं ।"

उसी समय मैंने अपने दोस्त उस धोबीको बुलाकर अपने नये मित्र को सौंप दिया। बड़ी कठिनाईसे मेरी बातों पर विश्वास करनेके बाद उसने बहुत हिचकके साथ उन्हें रखना स्वीकार कर लिया।

मि. आर. तबसे उसके साथ काम कर रहे हैं और उसके मकानके बगलकी ही कोठरीमें रहते हैं। धोबीको यह नहीं बताया गया कि वह कोई बड़े अमीर या ज्यादा पढ़े-लिखे आदमी हैं। वह पूरा समय लगाकर धोबीके साथ काम करते हैं।

उनके सहारेकी वजहसे धोबीका काम यानी आमदनी ड्योढ़ी हो गई है और कुल आमदनीमें रुपयेमें दो आनेका उनका हिस्सा है। उसके घर तबसे दो गधे भी बढ़ गये हैं और धोबीको अब कभी पैदल घर नहीं लौटना पड़ता। धोबीकी नई बीबीको उन्होंने, शायद एहतियातके खयाल से, अपनी बहन बना लिया है और साफ़ तीन प्राणियोंका यह एक बड़ा ही सुखी परिवार बन गया है।

मि. आर. को इन दिनों यह एक महान् साधना चल रही है और वह दुनियामें बड़े-बड़े काम कर रहे हैं। क्या इस बातकी आप कल्पना, इस प्रकारका विश्वास कर सकते हैं? इसकी सचाईको आप खुद समझ सकते हैं? मैं इसे कुछ स्पष्ट करनेकी कोशिश करूँगा।

मि. आर. जबसे मेरे मित्र धोबीके साथ काम करने लगे हैं तबसे धुलने के बाद कपड़े जिस जमीनपर सुखाये जाते हैं उसके बारेमें यह विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि वह साफ़-सुथरी हो, कपड़ोंपर इस्तरी कुछ अधिक नफ़ासतके साथ की जाती है और उनकी तह करनेमें शिकनसे बचाव यानी 'क्रोज' और परतोंकी बराबरीका विशेष ध्यान रक्खा जाता है। कपड़े ठीक समय पर मालिकोंके घर पहुँचाये जाते हैं और गलत वायदे नहीं किये जाते। धोबी और उसकी पत्नीने मालिकोंके कपड़े पहनना धीरे-धीरे बिल्कुल छोड़ दिया है। कपड़े खोते तो पहले भी बहुत कम थे लेकिन उनका खोना करीब-करीब बन्द और फटना भी बहुत कम हो गया है। तेजाबी मसालेका प्रयोग बन्द कर दिया गया है और धोबीकी पत्नी किसी-किसी

मालिकके किसी-किसी हल्के फटे कपड़को कभी-कभी रफ़ू भी कर देने लगी है। इससे उन मालिकोंका ध्यान इस धोबीके परिवारकी ओर कुछ अधिकता के साथ आकृष्ट हो गया है।

यह सब मि. आर. की बदौलत ही हुआ है। मि. आर. की बदोलत जो-जो कुछ हुआ है उसका भीतरी पहलू ऊपर लिखी बातोंसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जिन परिवारोंके लोगोंके कपड़े मि. आर. के हाथोंसे निकलते हैं, उन सबके साथ उनका एक झीना, उन लोगोंको अज्ञात, लेकिन स्पष्ट और स्थायी सम्बन्ध जुड़ गया है। उन परिवारोंकी संख्या पहले ३६ थी और इन पंक्तियोंको लिखते समय ६३ और उन लोगोंकी कुल संख्या १९० है। इन १९० व्यक्तियोंमेंसे १४२ की शकल अभी तक मि. आर. ने नहीं देखी।

मि. आर. सिर्फ़ कभी-कभी ही किसी-किसी मालिकके घर कपड़े लेने-देने जाते हैं। और वह तब, जब किसी वजहसे वादेके समय पर हमारा प्रधान धोबी उनके पास नहीं पहुँच पाता।

अपने मालिकोंके साथ इतने कम परिचयके बावजूद भी मि. आर. के हाथों ज्यों-ज्यों उनके कपड़े निकलते और समय बीतता जाता है त्यों-त्यों उनके साथ उनका उतना ही अधिक सम्पर्क बढ़ता जाता है। मि. आर. के हाथों धुले, इस्तरी किये या तह किये कपड़ोंको पहनने वालोंके स्वास्थ्य, स्वभाव और समझदारीपर उनका कुछ न कुछ असर पड़ता है और वह असर हमेशा अच्छा ही होता है।

और मि. आर. का यह कपड़ोंका कार्य इसी तरह जारी रहा तो एक समय ऐसा आ जायगा कि उनके हाथों धुले कपड़े पहननेपर बीमार एक-दम अच्छा हो जाय और चिड़चिड़े स्वभाव वालेके मुँहसे फूल झड़ने लगें। आप इसे असम्भव समझते हैं? लेकिन ऐसी दो घटनाएँ इस समय तक भी हो चुकी हैं।

एकबार जब वह जरूरत पड़ने पर किसी घरमें कपड़े देने गयेतो उस समय उस घरकी सास और बहूमें बड़ी अशोभन-सी लड़ाई हो रही थी। वह नौजवान बहू सुन्दर और बहुत मधुर स्वर वाली होती हुई भी बड़े कर्कश, कठोर शब्दोंमें अपनी साससे लड़ रही थी। घरकी मालकिन यानी उस सासके बेटे और बहूके पतिने कमरेसे बाहर आकर मि. आर. से कपड़े लिये और उनके मुँहसे दुखित स्वरसे निकल पड़ा—

"कैसी मर्दानी औरतसे पाला पड़ा है!"

"यह साड़ी जम्पर उन्हें पहनने दीजिये, सब ठीक हो जायगा" मि. आर. ने कुछ दबे स्वरमें उड़ते-से शब्दोंमें एकबार बाबूजीको भर आँख देखकर कहा। फिर अपना तौर और स्वर बदलकर कहते गये, "बहूजी को ये दो कपड़े आज दस बजे तक पहुँचाने थे, सो लाया हूँ। आपके पड़ोस वाले वकील साहबकी लड़कीको बहूजीके इस जम्परके गलेकी काट बहुत पसंद आ गई सो उसने इसका नमूना कागज पर उतारनेके लिए इसे ले लिया और मुझे घण्टे भर इसी वजहसे उनके घर बैठना पड़ा, नहीं तो मैं दस बजे ही ये कपड़े पहुँचा देता। इसके गलेकी काट है भी बहुत सुन्दर।"

अपने पतिके पीछे-ही-पीछे बहूजी भी काफ़ी पास आ गयी थीं। और उन्होंने मि. आर. की करीब-करीब पूरी ही बात सुन ली थी। उनकी बातके शुरूआती हिस्सेपर बाबूजी कुछ चौंके भी थे। लेकिन उसको साफ़ समझानेके लिए कुछ कहने-पूछनेका निश्चय जबतक करें तबतक मि. आर. वहाँसे जा चुके थे।

और उस दिनसे काफ़ी तेज रफ्तारीके साथ, उस सुन्दर नौजवान पत्नीका स्वभाव बदलने लगा था। उस सुन्दर कटावके गलेवाले जम्पर को पहननेवाली उस रमणीके सुन्दर गलेसे असुन्दर शब्द निकलने धीरे-धीरे करके समाप्त ही आये हैं।

अपने जिन मित्रोंसे मैंने इस घटनाकी चर्चा की उनमेंसे एकको छोड़ कर और किसीने इसपर विश्वास नहीं किया। मेरे जिस मित्रने इसे सच माना, वह सेक्स और मनोविज्ञानके खासे मर्मज्ञ हैं। उनका कहना

है कि मि. आर. खुद सुन्दर, स्वस्थ, सुशिक्षित अभी ३२ सालके युवक हैं और उनकी बातचीतके ढंगमें प्रभाव और भावुकता है, और चूँकि सभी का हृदय अपनी भीतरी-बाहरी सुन्दरताकी क़दर और प्रशंसाका आम तौर पर भूखा होता है, और पुरुष-सौन्दर्यकी ओर स्वाभाविक आकर्षण के साथ साथ वैसे किसी पुरुषके द्वारा अपनी क़दर उसे और भी अधिक प्रिय होती है इसलिए उस युवतीका मि. आर. से प्रभावित होना स्वाभाविक है। जिससे कोई व्यक्ति प्रभावित होता है उसके 'सजेशन' यानी संकेत को आसानीके साथ ग्रहण कर लेता है। मि. आर. ने सुन्दर गलेकी बात कहकर मीठे और कोमल शब्द बोलनेका संकेत उस युवतीके प्रति जरूर अपने मनमें उठाया होगा और इसीलिए यह बात उसके मनमें उतर गई होगी और इसका प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ा होगा।

मेरे उक्त मनोविज्ञान-विशारद मित्रकी दलीलसे मेरे दूसरे भी कई मित्र अब इस मामलेमें सहमत हैं। लेकिन मि.वी.का कहना है कि इस मामले में मेरे मनोवैज्ञानिक मित्रका विचार बहुत कम अंशमें ही ठीक है।

मि. वी. का कहना है. इस मामलेमें सेक्स और मनोविज्ञानकी प्रेरणा नहीं बल्कि एक और ही चीज काम करती है। वह एक सूक्ष्म, तरल-सी चीज है जो उनके हाथोंकी उँगलियोंकी राह बहकर उन सब कपड़ोंमें समा जाती है जिनकी वह तह या इस्तरी करते हैं। वह चीज उनके भावों और विचारोंसे भी सूक्ष्म होती है और उसे शायद एक रूपमें चुम्बकीय शक्ति या 'मैगनेटिज्म' कहा जा सकता है। इस चुम्बकीय शक्तिके साथ मि. आर. के जो विचार या भाव मिले हुए होते हैं उन्हें इन तीन वाक्योंमें व्यक्त किया जा सकता है—

१. इस कपड़ेका पहननेवाला मेरा प्रिय और आत्मीय है। वह मेरा परिचित हो या अपरिचित, वह है मेरा अपना ही। इस कपड़ेके द्वारा मैं अपने मनका यह संदेश उसके पास भेजता हूँ।

२. इस कपड़ेका पहननेवाला सुखी और प्रसन्न रहे और दूसरोंके

अधिकाधिक प्रेमके योग्य बने। इस कपड़ेके द्वारा मैं अपना प्रेम और प्रोत्साहन उसके पास भेजता हूँ।

३. इस कपड़ेका पहननेवाला ईश्वरीय आत्माका अंश है और महान् है। भले ही वह इस सचाईको अभी कितना ही कम जानता हो। इस कपड़ेके द्वारा मैं उसके पास अपनी श्रद्धा और ईश्वरीय प्रबन्धके संचालक गुरुजनोंका आशीर्वाद भेजता हूँ।

और मि. आर. के हाथों निकले हुए प्राय: सभी कपड़ों-द्वारा इन तीन तरहकी भावनाएँ उन पहनने वालोंके पास कम या अधिक अंशमें पहुँच जाती हैं। निस्संदेह इनके अलावा कभी कभी किन्हीं कपड़ोंके साथ मि. आर. के व्यक्तिगत संदेश भी किसी-किसी पहनने वालेके पास पहुँचते हैं। और इनमेंसे कोई भी अपना गुप्त या प्रकट प्रभाव किये बिना नहीं रहता।

अब आप देख सकते हैं कि मि. आर. कितना काम कर रहे हैं। यह बिल्कुल सच है कि उन्हें खुद अपने इन महान् कामोंका पूरा पता नहीं है।

मि. आर. के कामोंका फल प्राय: जिस तेजीसे होता है वह आश्चर्यजनक है। जिस दूसरी प्रत्यक्ष फलवाली घटनाकी मुझे चर्चा करनी थी, वह इस धोबी परिवारके एक ग्राहकके बीमार बच्चेकी बात थी।

"तुम बच्चेके कपड़े धोकर लाये हो, वह तो बेचारा चार दिनसे निमोनियामें बेचैन तड़प रहा है—इन कपड़ोंकी अब इतनी जल्दी क्या थी" बच्चेकी माँने आँखोंमें आँसू भर कर मि. आर. से कहा।

बच्चेका खटोला मि. आर. की आँखोंके सामने था, "आप उसके कपड़े बदलवाइये, इतनी उदास न होइये। बच्चा जल्द अच्छा हो जायगा" मि. आर. ने कहा और उनके स्वरमें बच्चेकी माँने कुछ महसूस किया।

बच्चेको धुले हुए कपड़े पहनाये गये। उसी समयसे उसकी हालत सुधर चली और तीसरे दिन वह बिल्कुल अच्छा हो गया।

उस रमणीके स्वभाव-परिवर्तन और इस बच्चेके स्वास्थ्य-लाभमें मि. आर. की शुभ कामनाओंका गहरा हाथ था, कुछ अन्य खोजोंसे मैं इस नतीजेपर पहुंचा हूँ।

मि. आर. के ६३ मालिकोंमेंसे ८ अब ठीक समय पर और बिना किसी तरह की काट-छाँट किये उनकी मजदूरी चुका देते हैं। मि. आर. का कुछ लिहाज उनके दिलोंमें हो गया है। मि. आर. के ही नहीं, दूसरे सभी लेनदारोंके पैसे अब इन घरोंसे ठीक-ठीक मिलने लगे हैं।

मि. आर. के महान् कार्योंकी यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण सफलता है।

आप इसे कोई छोटी बात समझते हैं ?

मेरे एक मित्रने मोटा हिसाब लगाया है कि अगर हिन्दुस्तानके मालिक अपने नौकरोंको और काम करने वालोंको ठीक समय पर पैसे दे दिया करें तो उनकी आमदनी १२।। फ़ी सदी और उनकी नेकनामी और सुविधाएँ ३३।। फ़ी सदी बढ़ जायें और चक्रवृद्धिके किसी फार्मूलेके अनुसार तकाजे और बट्टेखातेकी मदोंमें बरबाद होनेवाली उनकी रकमोंका ७५ प्रतिशत बच जाय।

मौजूदा जमानेके एक बहुत बड़े भारतीय गुरुने अध्यात्म-पथके जिज्ञासुओं के लिए जो सार रूपमें संदेश एक बहुत छोटी-सी पुस्तिकामें दिया है उसमें यह भी संकेत किया है कि लोगोंको अपने नौकरोंकी तनख्वाहें ठीक समय पर दे देनी चाहिएँ। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समय पर तनख्वाहें या मजदूरियाँ न अदा करना भी कोई बहुत व्यापक बुराई है और इस बुराईसे छुटकारा पाना कोई बड़े महत्त्वकी बात है।

उस पुस्तकका अनुवाद संसारकी प्रायः सभी भाषाओंमें हो चुका है और कई भाषाओंमें उसके दर्जनों संस्करण निकल चुके हैं। वह पुस्तक अँगरेजी भाषामें लिखी गई है, उसका नाम 'ऐट दि फ़ीट आव् द मास्टर' मूल्य करीब ६ आने है; और जिन महात्माका वह संदेश है उनका नाम महात्मा के. एच. है; वह जातिके कश्मीरी ब्राह्मण हैं और मिस्टर वी. के. विश्वासके अनुसार पिछले एक जन्ममें वह ही यूनानके प्रसिद्ध धर्मगुरु पाइथागोरस थे।

"यह एक मनोरंजक समाचार है। मैं आज ही एक कार्ड लिखकर यह पुस्तक मँगा लूँगा। आप यह और बता दीजिए कि आपके वह मित्र

महोदय कौन हैं जिन्होंने ठीक समय पर तनख्वाहें न मिलनेकी वजहसे होने वाले नुक़सानोंको फ़ीसदीके हिसाबमें निकाला है।"मेरे मित्र मिस्टर सी. कह रहे हैं।

मिस्टर सी. के इस सवालका जवाब देनेके लिए मैं बाध्य नहीं हूँ। दोस्तों और अपने बराबर वालोंकी जो चर्चा मेरे लेखोंमें आ जाती है उन सबके नाम और पते-ठिकाने मुझे याद ही बने रहें, यह कोई जरूरी नहीं है। अलबत्ता एक जिम्मेदार लेखकके रूपमें मैं किसी महापुरुष या महान् ग्रन्थके नाम पर कोई ऐसी बात नहीं कह सकता जिसका हवाला अपने किसी भी पाठकके पूछने पर न दे सकूँ।

इस पगडंडीको छोड़कर अब आप अपने चौड़े रास्ते पर आइये। मिस्टर आर. ने आठ आदमियोंको इस बातके लिए प्रभावित कर लिया है कि वे ठीक समय पर लोगोंके पैसे चुका दिया करें।

उनका यह प्रभाव आठ आदमियों तक ही सीमित न रहकर कम-से-कम आठ लाख आदमियों तक पहुँचेगा।

उन आठ आदमियोंके बाद प्रभावित होनेवाला नवाँ आदमी शायद मैं हूँ जो कि इन पंक्तियोंको लिखनेके लिए आज पहली बार पहली तारीख को ही अपने दूध वालेका (क्योंकि नौकर मेरा कोई है ही नहीं) हिसाब साफ़ करके ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ; और मेरा अनुमान है कि इस पुस्तकके छप जाने पर कम-से-कम अस्सी आदमियों पर इसका प्रभाव पड़ जायगा और इसी तरह आदमियोंसे आदमियोंको यह प्रभाव बराबर लगता रहेगा।

इन सब बातोंसे आप देख सकते हैं कि मिस्टर आर. इस धोबी-परिवारमें काम करते हुए संसारका एक बहुत बड़ा काम कर रहे हैं और अब उन्हें मालूम हो गया है कि वह कहीं भी, किसी भी व्यवसायमें रहकर बहुत बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। वह अब मानते हैं कि बड़ा काम करनेके लिए किसीको अपना पेशा या स्थान बदलनेकी जरूरत नहीं है—आदमी जहाँ रहकर जो कुछ करता है, वहीं, उसी काममें वह बड़े और महान् कार्य कर सकता है।

जल्दी ही मि. आर. अपनी पुरानी दूकान सम्हालने जाने वाले हैं; वहां उनकी जरूरत भी अधिक है। और वहाँ करते हुए वह और भी अधिक लोगोंकी और भी ऊँची सेवाएँ करके मौजूदासे भी अधिक महान् काम कर सकते हैं।

मिस्टर आर. इन दिनों उसी इमारती गुफाकी निचली छत पर बैठकर रोजाना एक घंटा अपनी उपासना और स्वाध्याय करते हैं जिसकी ऊपरी छत पर बैठकर मैं करता हूँ। मिस्टर आर. को लेख लिखने नहीं आते; लेकिन जब कभी मैं निचली छत पर उतर कर, मिस्टर आर. की गैरहाजिरी में, उनके बैठनेकी जगह पर सिर रखकर लेट रहता हूँ, तब मेरे मनमें अपने लेखोंके लिए बड़े सुन्दर सुन्दर नये विचार उठने लगते हैं!

माला यों फेरिये

एक दिन मैंने अपनी पत्नीको लाल पत्थरका एक छोटा-सा टुकड़ा लाकर दिया।

"बच्चोंका खिलौना!" उसने उसे हाथमें लेते हुए कहा और बरतनों की अलमारीमें एक तरफ़ डाल दिया।

दूसरे दिन मैंने उतना ही बड़ा लेकिन हरे रंगका और कुछ दूसरी शक्लका एक दूसरा पत्थर उसे दिया।

"बेकारकी चीज़' उसने लापरवाहीसे कहा और उसे लेकर मेज़ पर मेरी किताबोंके बीच लुढ़का दिया।

तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें और आठवें दिन भी मैंने एक-एक नये रंग और नई शक्लका पत्थर ला-ला कर उसे दिया और उसने किसीको कहीं और किसीको कहीं उसी प्रकार फेंक दिया। आठवें दिन उसने झुंझलाकर कहा :

"यह भी कोई सयाने आदमीका खेल है? आप जमना किनारे लिखने-पढ़ने जाते हैं या कंकर-पत्थर बीननेमें समय बरबाद करते हैं?"

नवें दिन मैं नवें रंग और नवीं काटछाँटका पत्थर लाया। चुपचाप पिछले आठ पत्थर ढूंढ़-ढूंढ़ कर इकट्ठे किये और एक थालमें नवोंको एक खास सिलसिलेसे सजा कर रख दिया। उन्हें इस तरह रखते ही वे एक दूसरेसे बिलकुल सट कर एक अत्यन्त सुन्दर चन्द्राकार-सी मालाके रूपमें बन गये। पत्नीकी दृष्टि जब उस थाल पर पड़ी उसने झपट कर वे सब पत्थर समेट लिये और कुछ देरकी कहा-सुनीके बाद यह निर्णय हुआ कि वह मुझे पाँच रुपयेका एक नोट देगी और मैं अगले दिन बाजारसे जैसे भी हो सके उन पत्थरोंको मजबूत चाँदी या रेशमके तागेमें पिरोकर उनकी माला बनवा लाऊँगा।

इस प्रकार मेरी पत्नी नवें दिन यथेष्ट बुद्धिमती बन गई ।

लेकिन मेरी आशा है कि आप जो इस पुस्तकके दूसरे खंडके आठ लेख अभी तक पढ़ आये हैं, प्रारंभसे ही उतने बुद्धिमान (या बुद्धिमती) अवश्य हैं जितनी मेरी पत्नी नवें दिन हो पाई थी ।

पिछले आठ लेखोंको एक साथ मिलाकर देखनेसे निस्संदेह एक निश्चित-सी विचारधारा बन जाती है ।

उस विचार-धाराकी हैसियत यद्यपि मोतियों या रत्नोंकी मालाके बराबर नहीं है, फिर भी रंग-बिरंगे पत्थरोंकी एक सुन्दर 'डिजाइन' की मालाकी तरह सुन्दर अवश्य है ।

जमनाकी रेतीमें उस तरहके रंग-बिरंगे और एक ही आभूषणके आकार में सट कर बैठ सकने वाले पत्थर नहीं मिल सकते; वास्तवमें वे पत्थर किसी व्यक्तिके मालाके उस जगह टूट कर बिखरे हुए टुकड़े ही थे और एक-एक करके मेरे हाथ लग गये थे ।

हो सकता है कि मेरे पिछले आठ लेख भी किसी निश्चित विचार-धारा की गति-पूर्ण लहरें निकल सकें ।

प्रेम हर समय और हर हरे और सूखे मौक़ेकी चीज है—यह इस पुस्तक के दूसरे खंडके पहले लेखका अभिप्राय है ।

प्रेमका सम्बन्ध जीवनसे है और जीवनका यौवन से; जीवन कभी बूढ़ा या कमजोर नहीं होता—दूसरे लेखका अभिप्राय है ।

प्रेमके कई दर्जे हैं और हर दर्जेका आवश्यक स्थान और उपयोग भी है—तीसरे लेखका अभिप्राय है ।

प्रेम और ज्ञान अधिक दूर तक अकेले नहीं चल सकते । जहाँ एक आता है वहाँ, आगे-पीछे, दूसरेके भी दर्शन अवश्य होते हैं—चौथे लेखका अभिप्राय है ।

प्रेम और ज्ञानका मनुष्यकी जीवन-यात्रासे गहरा सम्बन्ध है और अपनी उस यात्रामें एक नियम और नाप-तौलके भीतर ही वह इन दोनों चीजोंको जगा सकता है और अपनी चाल और पहुँचका

अनाप-शनाप अन्दाजा लगानेकी हानिकर भूलसे बच सकता है—पाँचवें लेखका मतलब है।

ज्ञानका सम्बन्ध हमारी मामूली समझ-बूझसे अटूट है। मामूली समझ-बूझके साधनों और क्षमताओंकी उपेक्षा करके हम ज्ञानकी ऊँची मंजिलों पर नहीं पहुँच सकते—छठे लेखका आशय है।

जानकारी (ज्ञान) के अपने साधनों और अपनी क्षमताओंका पूरा उपयोग हमें ऊँची जानकारियोंकी प्राप्तिके सिलसिलेमें भी करना चाहिए। ज्ञान किसी दूसरेसे प्राप्त होनेकी नहीं, स्वयं अपने आप प्राप्त करनेकी चीज है और हमारा छोटा-से-छोटा साधन और विचार उसमें सहायक हो सकता है, अपने साधनोंकी उपेक्षा बड़े घाटेकी बात है—सातवें लेखका अर्थ है।

ज्ञान या प्रेमकी मंज़िलों पर बढ़नेका एकमात्र उपाय क्रिया-शीलता है। कोई भी कार्य छोटा या बड़ा नहीं। ठीक भावना और ऊँची जानकारी के साथ किया हुआ छोटे-से-छोटा काम भी बड़े-से-बड़ा फल दे सकता है—आठवें लेखका सन्देश है।

और इन आठों लेखोंको मिलाकर तकाजा यह है कि आप स्वतंत्र रूप से, लेकिन बुद्धिमानीके साथ प्रेम करें और दूसरोंको करने दें। प्रेम और सहानुभूतिको साथ लेते हुए मन-पसंद ज्ञान या जानकारियाँ प्राप्त करें, लेकिन अपनी बुद्धि या साधारण समझ-बूझके विपरीत किसी दूसरेके रोबमें न आयें और जो कुछ भी करे उसीमें अपने भरपूर प्रेम या ज्ञानकी रूह फूक दें।

और अब इस नवें लेखमें आपसे क्या कहना चाहिए, मैं सोच रहा हूँ।

लेकिन मैं रुकूँगा। मेरा अनुमान है कि संसारमें सीख, सँदेसे और तकाजे ही सबसे अधिक बेकार और बरबाद होनेवाली वस्तुएँ हैं।

मेरे एक बुद्धिमान मित्रने एक बार एक उलझी हुई, फिर भी पतेकी, बात कही थी। उन्होंने कहा था—

"सीख या सँदेसा जितना ही ऊँचा और उपयोगी होता है उतना ही कम सुना-समझा जाता है, और यह जितना ही नीचा और अनुपयोगी होता है उतना ही अदेय—न देने योग्य—होता है।"

इसका बहुत कुछ अर्थ है कि सीख और सँदेसे बेकारकी चीजें हैं।

कुछ-कुछ इसी आशयकी बात मेरे उन मित्रसे पहले किसी और वयोवृद्ध---कहते समय नहीं तो अबतक सही, वह 'वृद्ध' अवश्य हो गये होंगे---बुद्धिमानने कही थी। उन्होंने कहा था---

"पूत कपूत तो क्यों धन-संचय
पूत सपूत तो क्यों धन-संचय"

बेटा यदि कपूत है तो उसके लिए बापका धन जोड़कर रख जाना व्यर्थ है, क्योंकि वह उसे जल्द ही बरबाद करके कंगाल हो जायगा; और बेटा यदि सपूत है तो भी उस के लिए धन जोड़कर रख जानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह स्वयं ही अपनी योग्यतासे यथेष्ट धन कमा लेगा।

धन वाली यह बात सीखों और सँदेसों-तकाजों पर भी बहुत कुछ लागू होती है।

तब फिर पिछले लेखोंमें मैंने जो भी नीचे या ऊँचे सँदेसे देने या तकाजे करनेका प्रयत्न किया है, उन्हें मैं वापस लेता हूँ। आपने पिछले पृष्ठोंमें जो कुछ पढ़ा है उसे अन-पढ़ा कर जाइये। उसमें बहुत कुछ नीचा और 'अदेय' भी तो हो सकता है।

और मेरे इन लेखोंको ही नहीं, अपनी पिछली पढ़ी और सुनी सभी बातोंको आप अनपढ़ी और अनसुनी कर जायें, यह मेरी सलाह---नहीं नहीं, प्रस्ताव---है !

आप ऐसा कर लेंगे तो अपने मामलोंको स्वयं, केवल अपनी ही बुद्धि से सोचने लगेंगे, और तब आप जो कुछ करेंगे उसमें एक नया बल और नया सुख होगा।

अपनी इच्छा और अपने निर्णयके अनुसार आप अपने-अपने अभीष्ट प्रेमों और मन-पसंद जानकारियोंकी राह पर स्वच्छन्द रूपसे, सुखपूर्वक बढ़ें।

समाजके बीच रहते हुए सुखपूर्वक बढ़नेके लिए शायद यह आवश्यकता पड़ेगी कि आप अपने विचारोंमें पूरी और समाजके बीच व्यवहारोंमें आंशिक, केवल उतनी स्वच्छन्दताका प्रयोग करें जितनेसे आपके सुखमें बाधा न

पड़ें। व्यवहारोंमें जिस स्वच्छन्दताके बरतनेसे समाजको और आपको अस्वास्थ्यकर चोट लगे, उसका न बरतना ही बुद्धिमानी भी जान पड़ती है।

"विचारोंमें पूर्ण स्वतंत्रता और कर्मोंमें समाज द्वारा नियंत्रित"—कुछ इसी आशयका किसी बड़े व्यवस्थाकारका भी कहना है।

अपनी बातोंको आप स्वयं ही सोचिये, यह नये समाजकी माँग है। बेशक दूसरोंके विचारोंका भी भरपूर सहारा लीजिए, लेकिन अपना निर्णय स्वयं कीजिए। केवल वेदों-शास्त्रों, महात्माओं और सुधारकोंके कहनेसे ही कुछ करना आपकी प्रगतिके लिए बहुत घातक है।

यह मेरी सीख और सलाह नहीं, केवल एक सुझाव या प्रस्ताव-सरीखा, सूचना-सरीखा कहना है।

अगर मेरा यह कहना ग़लत है तो सोचिये, कैसे; ठीक है तो सोचिये, कैसे।

शास्त्रों या बड़ोंका जो कहना आप ठीक मानते हैं वह ठीक है तो सोचिये, कैसे; और अपने मनकी जिन बातोंको आप ग़लत मानते हैं वे ग़लत हैं तो सोचिये, कैसे!

ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञानकी बात मामूली समझबूझके हिसाबसे ग़लत नहीं ठहर सकती; ऊँचे-से-ऊँचे गणितका नतीजा साधारण जोड़-बाक़ी और गुणा-भागके गणितसे ग़लत नहीं ठहर सकता।

मैं आपके सामने पिछले सब पढ़े-सुनेको अनपढ़ा, अनसुना करनेका प्रस्ताव रख रहा हूँ, तो फिर मैंने भी इतना सब लिखा किस उद्देश्य से है?

इसका उत्तर देनेके लिए मुझे एक बार स्वयं आपके सामने आना होगा और मैं आऊँगा भी।

इस पुस्तकका अगला, अंतिम लेख तो आप पढ़ेंगे ही!

क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

मैंने एक इरादा किया है—जिस समय पाठक इस अन्तिम लेख पर पहुँचेंगे और वे इसे पढ़नेका इरादा करेंगे, उसी समय मैं उनके पास पहुँचकर उनके दरवाज़े पर थपकी देकर कहूँगा—

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

और उनमेंसे जिन-जिनको अपने स्वभाव, सुविधा या सेक्स[1] के कारण कोई आपत्ति न होगी, उनके पास मैं जा बैठूँगा और उन्हें बताऊँगा कि इन लेखोंका लेखक मैं ही हूँ।

इस तरह मेरे इस लेखको पढ़नेका इरादा करते ही अपने पाठकोंके पास मेरा जा पहुँचना सम्भव भी है और कुछ विशेष कारणोंसे मेरे लिए आवश्यक भी है।

सम्भव इस तरह है कि जब किसीके हाथमें किसी दूसरेके हाथ या दिल-दिमागकी निकली हुई कोई चीज होती है तो उन दोनोंके बीच एक सम्बन्ध—एक तरहका सन्देश और भावनाका वाहक तार-सा—स्थापित हो जाता है। यह मनोनियमका एक प्रारंभिक नियम है।

इस सम्बन्ध स्थापित करने वाले तारसे कौन कितना काम ले सकता है यह बिलकुल अलग बात है। मेस्मरेज़म या हिप्नाटिज़म वाले अक्सर किसी व्यक्तिका रूमाल या अँगूठी अपने 'साधक' के हाथमें देकर उस व्यक्ति के बारे में बहुत-सी बातें मालूम कर लेते हैं।

मैं अपने पाठकोंके हाथमें थमी हुई इस लेख वाली पुस्तकके सहारे ऐसा सम्बन्ध उनसे स्थापित कर सकता हूँ और साक्षात्, सशरीर उनके दरवाज़े खटखटाने तकका चमत्कार साध सकता हूँ या नहीं—यह बताकर मैं उनका

---

[1] 'सेक्स' अंग्रेज़ीका शब्द है, जिसका अर्थ है, लिंग या लिंगभेद। हिन्दीमें इस अर्थका श्रवण-शिष्ट शब्द मुझे अभी नहीं मिला है।

कुतूहल, संदेह, विश्वास-अविश्वास घटाना या बढ़ाना नहीं चाहता; लेकिन इतना अवश्य कह देना चाहता हूँ कि मेरे पाँच-सात मित्र—उन्हें अभी केवल अपने कृपालु या भावी मित्र कहना ही अधिक ठीक होगा—ऐसे हैं जो ऐसा कर सकते हैं; और उनमेंसे एक-दो तो अभी भी मेरे साथ इतना अक्सर करते हैं कि जब कभी मेरे हाथमें उनका कोई लिखित संदेश होता है तब वे, उस लिखित संदेशके अतिरिक्त कुछ और संदेश भी मेरे पास उस काग़ज़ के सहारे भेज देते हैं।

और अपने पाठकोंके पास उस समय मेरा जा पहुँचना आवश्यक इसलिए है कि—

१. मैं चाहता हूँ कि मेरे इन लेखोंको—और इस प्रकार मुझे भी—समझने-सराहनेमें उन्हें कोई कठिनाई या उदासीनता या अरुचि न हो; मैं स्वयं पहुँचकर उनके सामने सब बात स्पष्ट कर दूँ; और

२. अपने लेखोंका पूरा और ठीक प्रतिभाव या प्रतिदान मुझे मिले और पाठकजन औचित्य और मेरी इच्छाके अनुरूप मुझे उसका बदला दें।

"मैं अन्दर आ सकता हूँ ?" मैं उनसे आज्ञा माँगूंगा।

हमारे हिन्दी-भाषी भारतमें बहुतसे पाठक जहाँ अपने रूखे या 'बड़प्पन' के स्वभावके कारण या उस समय और मौक़ेकी किसी असुविधाके कारण मुझे अपने पास आने देनेसे इनकार कर सकते हैं, वहाँ बहुत-सी पाठिकाएँ परदा-प्रथा या लज्जा-प्रथा या संदेह-प्रथाके कारण भी मुझे अपने पास आने-देनेमें हिचकिचा सकती हैं।

अस्तु, जिनके पास पहुँचनेकी मुझे आज्ञा मिल जायगी उनके पास मैं बैठूँगा और उन्हें बताऊँगा कि इस अन्तिम लेखका, जिसे वे पढ़ने जा रहे हैं, लेखक मैं ही हूँ; और उनसे मेरी बातचीत प्रारंभ हो जायगी।

कुछ लोग कहेंगे, "आप कैसे ऐन मौक़े पर आये, मैं आपका यह लेख पढ़ने ही जा रहा था। आपका इस समय आ पहुँचना एक चमत्कारसे कम नहीं है।" कुछ कहेंगे, "आप खूब लिखते हैं मैंने आपके ये सभी लेख पढ़े हैं।" कुछ कहेंगे "आपके आनेसे मुझे बड़ी खुशी हुई, आइये चाय

पीजिए।" कुछ कहेंगे, "क्या खूब! आप ही इसके लेखक हैं, बैठिये मैं जरा इसे पढ़ लूँ तब आपसे और भी बात करूँ।" कुछ कहगे, "आइये साहब आपसे तो मुझे बड़ी शिकायत है। आप न जाने क्या लिखते हैं कि उसका कुछ मतलब ही समझमें नहीं आता।" कुछ कहेंगे, "तशरीफ़ रखिये; फ़रमाइए, मैं आपकी क्या खिदमत करूँ ?"

और कुछ ऐसी बातें कहेंगे जो मेरे लिए इतनी व्यक्तिगत होंगी कि उनका न लिखना ही विनय और संकोचकी सीमाके भीतर रह पायेगा।

मेरी-उनकी बातचीत किसी भी दिशामें होकर बढ़े, मैं उन्हें घुमा-फिरा कर और एक ठिकाने लाकर उनसे पूछूँगा—

आप कृपया निश्चित रूपसे बताइये कि (अ) आप मेरा यह लेख क्यों—किस लाभके लिए—पढ़ेंगे, और (ब) पढ़नेके बाद आपसे मुझे इस लेखका क्या पुरस्कार मिलेगा।

मिले हुए विविध उत्तर कुछ इस प्रकारके होंगे :

(अ) १—मनोरंजनके लिए। २—कुछ बात सीखनेके लिए। ३—जरा हिन्दीकी मश्क बढ़ानेके लिए। ४—आपकी मेरे एक दोस्त बहुत चर्चा कर रहे थे, इसीलिए यह देखनेके लिए कि आप कैसा लिखते हैं। ५—यों ही जरा सोनेके पहले कुछ पढ़ लेता हूँ तभी नींद आती है। ६—एक लेखकके लिए कुछ मसाला ढूंढ़नेके लिए। ७—शतरंजके साथी अभी तक नहीं आये, इसीलिए जरा वक़्त काटनेके लिए।

(ब) १—आपको मैं धन्यवाद दूँगा इतना समय मजेमें कटवा देनेके लिए। २—आपकी तारीफ़ करूँगा, कुछ दोस्तोंसे चर्चा करूँगा। ३—आपके दूसरे लेख और किताबें भी खरीद लिया करूँगा। ४—अपनी पत्रिकामें आपके लेख यथेष्ट पुरस्कार देकर मँगवाऊँगा। ५—आपको ? अच्छा, आपको भी क्या कुछ...? वैसे, यह किताब तो मैंने पैसे देकर ही ली है। ६—अजी साहब, आपको भला मैं क्या पुरस्कार दे सकता हूँ। ७—आपकी याद एक दफ़ा और ताजा और पक्की हो जायगी।

ये सब इस शर्तके साथ कि अगर लेख अच्छा हुआ तो !

लेकिन इन उत्तरोंमेंसे कोई भी मुझे पसन्द नहीं होगा ।

मैं चाहूँगा और उन्हें बताऊँगा कि वे मेरे लेखको मनोरंजन या ज्ञान के लिए न पढ़ें । मनोरंजनके लिए उसका पढ़ना मेरी अवहेलना करना है; ज्ञान और किसी सीखके लिए उसका पढ़ना भ्रम और मूर्खता है । मेरा लेख उन्हें मेरे साथ मानसिक रूपमें एकाकार होनेके लिए—मेरे साथ एकता, सहानुभूति, सामंजस्य स्थापित करनेके लिए, मुझे ठीक-ठीक समझने के लिए पढ़ना चाहिए । लेख पढ़नेका उद्देश्य कम-से-कम मेरी रुचिके अनुसार, यही है कि आप लेखकके [यहाँ पर मेरे] साथ तद्रूप, तद्भाव हो जायें । लेखमें जिस बातको मैंने जिस आशयसे लिखा है उसे ठीक उसी आशयमें उसी भावमें, उतना ही—न कम, न अधिक—समझ लें । मेरे कोई-कोई मित्र मेरी किसी-किसी भावनापूर्ण पंक्तिका इतना गहरा और ऊँचा अर्थ निकाल लेते हैं, जितनेका मुझे लिखते समय या और कभी अनुमान तक नहीं होता । यह भी मुझे सख्त नापसंद है । मेरे ऐसे मित्र तुलसीदास की चौपाई—**'आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यमूक पर्वत नियराई'** का इतना गूढ़ और योग-सूत्र-सम्बन्धी अर्थ निकाल देते हैं कि उससे तुलसीदास-जीकी आत्मा भी लजा जाती होगी : इतना ऊपर जाना भी लक्ष्यसे दूर रह जानेकी बात है । मेरा लिखना और आपका पढ़ना—यह वह साधन है, जिसके द्वारा मैं और आप, यानी संसारके दो परिचित या अपरिचित हृदय किसी एक स्थल पर कुछ देरके लिए जा मिलते हैं । यही मानव-हृदय और मस्तिष्कके लिए वर्तमान युगमें साहित्य-रूपी साधनाकी देन है । यह आपके हृदयको विस्तृत, व्यापक, सबको आपके भीतर समाया हुआ बनानेका साधन है । इस उद्देश्य और इस प्रयासके साथ मेरे लेखको पढ़ने में आप अपनी चेतनाको व्यापक, सर्वग्राही बनानेका एक परम उपयोगी व्यायाम करेंगे ।

मेरे इस लेखके द्वारा मेरे साथ तद्भाव होनेमें आपका बहुत बड़ा उठान है, चाहे मैं आपसे ज्ञान और विकासमें आगे होऊँ, चाहे पीछे । मेरा मतलब समझनेके लिए, जिस समय और जहाँ बैठकर—यह आगरेके समीप

यमुना तटवर्ती कलास-आश्रम है—मैं यह लेख लिख रहा हूँ जरा उस पर दृष्टि डालिए। इस समय मध्याह्नकालका एक बजा है। मेरे टीलेके नीचे बहती हुई मदोन्मता यमुना अपने उस दुस्साध्य यौवन पर आई हुई है, जिस पर वह सन् २४ के बाद कभी नहीं आई थी। जिस ऊँचे टीले पर बनी हुई इमारती गुफा की छतरी पर बैठकर मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, उस टीलेको तीन ओरसे यमुनाने घेर लिया है। यदि पूर्वकी ओरके नाले परके पुलको उसन ोड़ लिया—जैसा कि घंटे आध घंटेकी ऐसी ही उच्छृङ्खल चेष्टाओंसे वह सहज ही कर सकती है—तो भी दक्षिणकी ओरके टीलोंकी राह मैं अपने डेरे पर सकुशल पहुँच जाऊँगा; इसीलिए मैं भी निर्द्वन्द्व होकर अपनी लेखनी-क्रीड़ामें व्यस्त हूँ। पड़ोसके जिस गाँवमें मैं बसा हूँ वह यमुनाके उभरे हुए वक्षके बीच थिरकता हुआ कोई सुन्दर आभूषण-सा दीख रहा है। सब कुछ जलमग्न ही है। बाहरके एक दूसरे टीले पर बने हुए एक पुराने मठमें मैंने अपने कुछ साथी-स्वजनोंके साथ अपना डेरा हटा लिया है। हमारा कुछ सामान गाँव वाले पक्के मकानकी ऊपरी मंजिलमें, जिस मंजलको यमुनाकी तरंगें अभी नहीं छू पाई हैं, कुछ-कुछ यमुनार्पण की भावनाके साथ ही बन्द हैं। सामनेके खेत, पेड़, गाँव सभी कुछ जलमग्न हैं। यमुनाका दूसरा छोर मेरी दृष्टिकी दौड़के बाहर पहुँच गया है और यमुना सामनेकी ओर नदी न रहकर एक झील-सी दीखती है। उसकी उभरी छाती पर बहते हुए छप्पर, ढोर और मानव-शव अपने साथ अगणित सँदेसे लिये चल रहे हैं। मेरे इस लेखको पढ़ते-पढ़ते उन सँदेसों तक मेरे पाठकोंकी चेतनाको पहुँच जाना चाहिए। इसी समय एक औसत दर्जेका खूबसूरत फ़रिश्ता अर्थात् देव मेरे मस्तिष्कसे निकल कर काग़ज़ पर अंकित होने वाले मेरे विचारोंको समझनेका प्रयत्न कर रहा है। वह देव चेतनामें मुझसे कुछ ऊपरकी हस्ती है, फिर भी मुझे समझनेके लिए अपनी चेतनाको नीचेकी ओर फैलाकर वह अपना कुछ विस्तार, विकास ही कर रहा है। उसके सम्पर्कसे मानसिक उड़ानकी एक अस्पष्ट-सी प्रेरणा मुझे भी मिल रही है। सामनेकी छोटी-सी वासस्थलीसे आता हुआ एक मोर मुझे

देखकर वहीं ठिठक गया है। उसे मुझसे कुछ भय है, यद्यपि यह उसकी एक बहुत भद्दी भूल है। लेकिन उसे मनुष्य मात्रसे डरनेका ही अनुभव है; डरनेके उसके पास कारण हैं। मेरी और उस मोरकी चेतनाओंके बीच एक गहरी खाई है, जिसे पार कर एक दूसरेके समीप आनेकी समाई न उसमें है और न अभी मुझमें ही है। इस मोरकी तरह और इन चींटियोंकी तरह (जो न जाने कैसे, मेरे थैलेमें रक्खे हुए मेरे नाश्तेका पता लगाकर उसकी ओर एक जुलूस बनाकर निकल पड़ी हैं) इनकी समस्याओंको जब इन्हींके दृष्टिकोणसे, बिलकुल इन्हींकी तरह अनुभव करनेके योग्य हो जाऊँगा, तब मैं एक महात्मा हो जाऊँगा। इस लेखको पढ़ते-पढ़ते आप क्या सोचेंगे, उसे भी आपके ही दृष्टिकोणसे जाननेका मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं किस भावनाके साथ, किन अर्थोंमें ये शब्द लिख रहा हूँ उसे ठीक मेरी ही तरह अनुभव करनेका आप भी प्रयत्न करें। आप कम-से-कम मेरे लेखको इसीलिए—तद्रूप-तद्भाव और अनुचित न हो तो थोड़ी देर के लिए मेरे साथ एक-हृदय होनेके लिए ही पढ़ें। इसमें ही मेरे लिखने और आपके पढ़नेकी पूरी सार्थकता है।

और मेरे लिए आपकी ओरसे इस लेखका पुरस्कार ?

आप मेरे इस लेखको—बल्कि पूरी पुस्तकको—पढ़नेके बाद अपने आपको मेरा या मुझे अपना एक गिलास शर्बत, लस्सी, मठा, दूध या एक प्याला चायका, मौसम और अपनी सत्कार-प्रणालीके अनुसार, ऋणी समझें और उस ऋणकी अदायगीका भी ध्यान रक्खें। मुझे आप अपना एक ऐसा परिचित या अपरिचित मित्र समझें जो—आप कितने ही बड़े आदमी हों—आपसे कभी कम नहीं ठहर सकता, और—आप कितने ही छोटे हों—आपसे अधिक नहीं बैठ सकता।

इतनी बातचीतके बाद मैं आपसे पूछूँगा—"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

तब कहीं ऐसा तो न होगा कि आपको मेरे आने और जानेकी खबर ही न हो ?